अंधे आकाश का सूरज

अंधे आकाश का सूरज

• राबिन शॉ पुष्प

उन्हें ही—
जिनके पास न कोई आकाश है
और न जिनके हिस्से कोई सूरज···

—राबिन शॉ पुष्प

क्रम

कांच-घर

कैंसर से पीड़ित लड़की···चेहरे से बेहद खूबसूरत···हर क्षण मगर मौत मांगती हुई आखें···और जब ज़िंदगी से तंग आकर उसने एक चाकू से अपने को खत्म कर लिया, तो लहू से भीगा-भीगा उसका शरीर देखकर लिपि विश्वास इतना डर गई कि हॉल से बाहर आ गई। उसने सहमी-डरी आखों से इधर-उधर देखा···पाम का ऊंचा-सा पेड़। उसके मन में भी कोई ऊंचाई का वृक्ष लग गया···हरी सब्ज़ पत्तियां। वह हल्का-सा मुसकराने जा रही थी कि दीवार पर किसी अंग्रेज़ी फिल्म का बड़ा-सा पोस्टर···अर्द्धनग्न गिरी हुई औरत, उसके पेट से बहता हुआ लहू ! लिपि को लगा, जैसे आज हर तरफ चाकू ही चाकू हैं और इन चाकुओं से औरत का पेट घिरा हुआ है···हर औरत का पेट। 'एलफिंस्टन' से निकलकर वह टैक्सी-स्टैंड के निकट आकर रुक गई। उसका मन हुआ, जब आज हर चीज़ किराये पर ली जाती है, तो वह भी एक टैक्सी ताउम्र किराये पर ले ले, और ड्राइवर से कहे—"मुझे घुमाते रहो ··सिर्फ घुमाते रहो···इतने दिन घुमाते रहो कि मैं मर जाऊं और फिर मेरी देह को किसी अंधेरे फुटपाथ पर फेंक दो···" मगर उसने अपने पर्स को देखा। इस बार वह थोड़ा-सा मुस्करायी। टैक्सी-स्टैंड क्रॉस कर वह बस-स्टैंड की तरफ आ गई। किनारे एक बड़ा-सा बोर्ड। एक चुप खड़ी औरत। एक बच्चा, एक मुस्कराता हुआ आदमी। एक नीति-वाक्य—"परिवार संक्षिप्त कीजिए।" उसे लगा, यह आदमी सिर्फ इसलिए मुस्करा रहा है कि इसके हाथ एक नये किस्म का ठंडा चाकू आ गया है। जैसे शीत युद्ध होता है, वैसे ही यह नीति-वाक्य का शीत चाकू। मगर इसकी नोक का रुख भी हर औरत के पेट की तरफ ही है।

लिपि ने अपनी साड़ी को पूरी तरह से समेट लिया। सिटी जाने वाली बस खड़ी थी। मगध महिला कॉलेज की कुछ लड़कियां मूंगफली खरीदने लगीं। वे सब तंग कुरतों में थीं। दुबली-पतली, बीमार-सी लड़कियां, सबके पेट की गोलाइयां साफ-साफ दिखती थीं···लिपि ने एक बार फिर बोर्ड को देखा और आगे बढ़ गई।

अब वह बाईं तरफ बनी दुकानों के निकट से गुज़र रही थी। पिछली जनवरी को यहां पर ये पक्के मकान नहीं थे। रातोंरात उनमें आग लग गयी। चिता की लकड़ियों की तरह ये दुकानें जल गयीं··· इन दुकानों में बहुतों की जिन्दगियां थीं···। एलेक्शन-युग था। फिर रातोंरात यहां पक्की दुकानें उठ गयीं। सहसा ही लिपि को स्मरण हो आया, यहीं कहीं फायरिंग हुई थी। वह पैर रखती, उसे लगता, ठीक उसके तलवे के नीचे कोई गिरा है, गर्म-गर्म महसूस होता···वह शीघ्रता से चलने लगी। जल्द-से-जल्द वह इस लहू के दरिया को पार कर जाना चाहती थी। तलुवे की गर्माहट से वह इतना घबरा गई कि बिना कुछ देखे अशोक राजपथ क्रॉस करने लगी···ब्रेक, एक कार उसे धक्का देते-देते रुक गयी। उसने कुछ नहीं देखा। वह सीधा 'नटराज' स्थित 'एडना' में घुस गयी।

'एडना' उसके लिए नयी जगह नहीं। वैसे उसे 'सोडा-फाउंटेन' अच्छा लगता रहा है। मगर शीतम को पसंद नहीं—"लिपि, तुम इसे विचित्र मानोगी, परंतु यह सत्य है कि आदमी···ढेर-सारे आदमी मिलकर भीड़ के जन्मदाता हैं। यह भी हमसे बनती है। फिर भी हम इस भीड़ से डरते हैं, कतराते हैं। इस भीड़ से अलग होकर शांति और सुकून तलाशते हैं।"

—"हूं।"

—"और इसलिए मैं 'एडना' पसंद करता हूं। 'सोडा-फाउंटेन' में कई बार ऐसा हुआ कि हमें प्रतीक्षा में खड़े रहना पड़ा। प्रतीक्षा में खड़े रहना कितना बुरा है···आई हेट !"

—"लेकिन शीतम, कुछ लोग सारी उम्र प्रतीक्षा में खड़े हैं, उनके विषय में तुमने कभी सोचा ?"

—"तुम्हारी यही अदा तो मुझे प्यारी लगती है लिपि, तुम हर बात को 'सीरियस टर्न दे देती हो"···और वह खुलकर हंसा था। इतना हंसा था

कि लिपि का वाक्य ही घुल-पुंछ गया। हंसी अब तक छितरी हुई थी। वह चौंक गयी। प्रीतम की हंसी? नहीं, यह कोई और हंस रहा था। उसने एक कप कॉफी मंगवाई। धीरे-धीरे सिप करती रही। पहले जब वह पटना रहती थी, हर शाम प्रीतम उसके साथ रहता था।

वह फिर खुले में आ गयी।

अब वह मुड़कर महेन्द्र घाट की तरफ आना चाहती थी, मगर ट्रैफिक ···सिपाही का हाथ···वह रुक गयी। उसे लगा, वह जो चाहती है, जिसे चाहती है, जिधर जाना चाहती है, हर तरफ ट्रैफिक है, सिपाही का हाथ, प्रतीक्षा है।

अब वह 'काद्रा ग्लास हाउस' और सेंट जोसफ्स कान्वेंट के बीच में है। एक तरफ सजा हुआ, जगमगाता, रोशनी और शीशे का घर, दूसरी तरफ सलीब, यानी धर्म, यानी एक किस्म की मृत्यु···यह धर्म उसको राह नहीं आता, तो वह पटना छोड़ती ही क्यों···उसके कंधों पर यह मुकदमा लादा ही क्यों जाता···! उसने देखा 'गुप्ता फर्नीचर्स'। सामने गार्डेन चेयर्स, सोफा-सेट···महेन्द्र घाट के रेस्तरां जाते समय वह बराबर इन चीजों को देखा करती थी। मन-ही-मन सोचा करती थी, जब प्रीतम के साथ उसके पास एक घर हो जाएगा तो वह यहीं से गार्डेन चेयर्स ले जाएगी। प्रीतम को बताएगी भी नहीं, एकदम सरप्राइज देगी। वह एकदम आगे बढ़ गई। सोमवारी मेला। यहां से वहां तक फर्नीचर्स की दुकानें। सस्ती लकड़ियां, सस्ती कीमत। मगर आज उसकी यह भी हैसियत नहीं कि वह इनमें से भी एक खरीद सके।

वह सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आ गई।

कांच-घर।

यहां वह रोज प्रीतम के साथ आया करती थी। दोनों देर तक गंगा की लहरों को देखा करते। और जब तक शाम वाला जहाज छूटकर आंखों से ओझल नहीं हो जाता, प्रीतम लौटने का नाम ही नहीं लेता····"यह भी कोई बात हुई! जहाज छूट जाए और उसकी रोशनी के प्रतिबिंब को हम पानी में बिना अनुभव किए ही लौट जाएं···!"

लिपि दरवाजे को थोड़ा धकेल कर भीतर आ गई। कांच-घर। बाहर

व भला-भला लग रहा था। रेलिंग पर खड़े कुछ लोग, पीछे बैठे हुए कुछ लोग। वह चाय मंगाकर पीती रही। उसने घड़ी देखी। समय से अधिक हो गया था। पटने आने के पहले उसने शीतम को लिख दिया था—"मैं शाम वाले जहाज से पटना छोड़ूंगी। मुझे विश्वास है, तुम छूटते जहाज का प्रतिबिंब देखने अवश्य आओगे…"

मगर शीतम तो अभी तक नहीं आया! लिपि बैरे से बोली, "एक कप चाय और…हां, जहाज अब तक नहीं लगा?"

—"वह देखिए मेम साहब, जहाज उधर पानी में फंस गया है। उस पार से आ रहा था…घंटा भर हो गया। इधर से निकालने इंजन गया है।"

लिपि ने कांच-घर से देखा। दूर जहाज फंसा पड़ा था। उठता हुआ धुआं। एक कप और चाय वह धीरे-धीरे सिप करने लगी। आखिरी घूंट लेने ही जा रही थी कि शीतम आ गया—"हैलो!"

वह बस मुसकरायी—थोड़ा-सा।

बैरा आया, तो लिपि ने चाय के लिए फिर कहा।

दोनों चुप रहे। शीतम ने कहा, "अरे, कुछ कहो तो…! आज तुम्हारा कैसे गुज़रा? और वह कोर्ट?"

लिपि बोली, "फिर डेट पड़ गयी। 'अमन' देखने गई थी, बिना पूरी तसवीर देखे आ गई…"

बैरा चाय रख गया। दोनों खामोशी से सिप करते रहे।

इस बार लिपि का कांपता स्वर उभरा—"शीतम, तुमने क्या सोचा?"

"तुम तो बस यूं ही जिद करती हो! मैंने तो लिखा भी था…ऐसे नहीं चल सकता?"

—"ऐसे कैसे?"

—"बस, ऐसे ही…जैसे अब तक चलता रहा है, क्या हम दोनों के बीच कागज़ का टुकड़ा ज़रूरी है?"

—"ज़रूरी तो कुछ भी नहीं, शीतम,…मेरी मां के पास यही एक कागज़ का टुकड़ा नहीं था, और तुम तो जानते ही हो, मेरे पिता ने मां को यह कह घर से निकाल दिया कि वह उनकी कोई नहीं, मैं भी उनकी बेटी

नही''' ऊपर से मुकदमा लाद दिया। कितने लोग किराये पर अदालत में लाये गए, जिन्हें मेरी मां ने कभी देखा भी नहीं था, मगर हर शख्स मेरी सूरत देखकर कुछ कहने के पहले ही भाग गया'''क्योंकि मेरी सूरत पिता से एकदम मिलती है · फिर भी मैं उनकी बेटी नहीं ! मेरी मां के पास यही मामूली-सा कागज का टुकड़ा नहीं है'''शीतम, अगर तुम चाहो, तो मुझे यह कागज का टुकड़ा दे सकते हो'''"

—"तुम मेरे डैडी को नहीं जानतीं लिपि'''बस, ऐसे ही चलने दो !"

लिपि कुछ नहीं बोली। उसके सामने मां का उदास चेहरा घिर आया। वह आंखों के सामने प्याले को ले आयी। दोनों फिर खामोश हो गए।

थोड़ी देर बाद शीतम उठा—"अच्छा, लिपि, मुझे एक बहुत ही इम्पॉर्टेन्ट काम है'''उम्मीद है, तुम मेरी बात समझने की कोशिश करोगी !"

वह धीरे से बोली—"रुकोगे नहीं ? यह शाम वाला जहाज, आज तो इस पर मैं जाऊंगी'''इसकी रोशनी के प्रतिबिंब को पानी में'''"

बीच में ही वह हंसा, "डोंट बी इमोशनल'''! जहाज लगा ही कहां है'''! वह तो उधर फंसा पड़ा है'''यदि मैं प्रतीक्षा करता रहा, तो हो गया ! सी यू अगेन।"—और वह कांच-घर से बाहर आ गया।

लिपि विश्वास को लगा, वह कांच-घर में एकदम अकेली है। सब फ्रेम में मजबूती से शीशे ठुके हैं। कहीं से भी वह बाहर नहीं आ सकती। कहीं कोई द्वार नहीं और इसी तरह बंद-बंद उसे अपने फंसे जहाज की प्रतीक्षा करनी है'''केवल प्रतीक्षा'''! कांपते हाथों से उसने बैग खोला। आज ही कोर्ट से लिए हुए सिविल मैरेज के फार्म को अपनी मुट्ठी में रखकर वह धीरे-धीरे पीसने लगी'''

तीसरा नाम

कमरे का ताला खोलकर वह भीतर आता है। बैग एक किनारे रख देता है। ताला मेज़ पर रखता है। हाथ में चावियों का गुच्छा है···और उस गुच्छे में चौकोर प्लास्टिक का एक टुकड़ा। पिछली बार टूर पर निकला था, तो एक शाम प्रदर्शनी देखने चला गया था। साथ में वोहरा भी था। किसी भी रिप्रेज़ेंटेटिव के लिए शाम का वक्त काटना बहुत मुश्किल होता है···यूं ही सात बजे तक इधर-उधर करना होता है और फिर, किसी किताब की दुकान पर धरना। उसे कभी-कभी लगता है, उसके भीतर कई आत्माएं हैं···एक वह, जो सुबह-सुबह नहा-धोकर बैग में किताबें भर-कर कैन्वेसिंग को निकल जाती है—"यह देखिए साहब, हमारे यहां से नई निकली है···ऑफसेट प्रिंटिंग···एक भी प्रूफ मिस्टेक निकल जाए तो ··इसमें जितने टॉपिक्स हैं, अब तक प्रकाशित किसी भी पुस्तक में नहीं···और सर, कवर ट्राई कलर में है···साथ ही वार्निश्ड···।" धीरे-धीरे दिन ढलता है और दूसरी आत्मा पहली से आकर कहती है—"बाई, तुम्हारा टाइम ओवर···" फिर वक्त काटने की एक लाचारी चारों तरफ भर जाती है···इस शाम का क्या किया जाए !···ऐसी ही एक शाम थी, जब करने को कुछ नहीं था, वह वोहरा के साथ प्रदर्शनी चला गया था। स्टॉल्स अभी पूरी तरह से सजे नहीं थे। कुछ तो अभी बन ही रहे थे। पहले दोनों ने पॉपकार्न खाए। फिर एक-एक कप चाय। देखने को कुछ खास नहीं था। चाय की दुकान के सामने ही मौत का कुआं खोदा जा रहा था। दोनों उठकर वहीं आ गए थे। कुआं खोदा जा रहा था और वह आदमी भी वहीं था, जिसे तैयार हो जाने पर इसमें छलांग लगानी थी। वह कुएं को देखता रहा, अचानक उसकी आंखें उस आदमी पर चली

गई, जिसे कूदना था···कहीं कुछ नहीं···वह शांत भाव से कुएं का खुदना देख रहा था···और जाने क्यों, उस आदमी की आंखें, उसे एकदम कुसुम जैसी लगी थीं···

हर बार की तरह वह टूर पर जाने का आर्डर लेकर आया था। जाने की तैयारियां शुरू हो गई थीं। कुसुम एक-एक चीज लाकर रख रही थी। वह सूटकेस में पैक करता जा रहा था। हर काम वह तेजी से कर रहा था। एक बार जो उसने सिर उठाकर देखा, तो कुसुम, गुमसुम खड़ी उसे एकटक देख रही थी। उसने पास आकर कहा था—"पैसों के लिए आखिर बाहर तो जाना ही होगा न···"

—"मैंने कभी मना किया है।"—और कुसुम दूसरे कमरे में चली गई थी। वह फिर सूटकेस में कपड़े ठूंसने लगा था।···उस आदमी की आंखें···एकदम कुसुम की आंखों की तरह थीं—"मैंने कभी मना किया है···पैसों के लिए आखिर कूदना तो पड़ेगा ही···" और उसे लगा था, मिट्टी खोदता हुआ मजदूर और कोई नहीं, वह स्वयं है—हर बार, वह इसी मजदूर की तरह अकेलेपन का एक कुआं खोदकर कहीं लग आ जाता है और कुसुम रोज इस अंधे कुएं में डूबती रहती है···

—"क्या देख रहे हो ? चलो न।"—वोहरा ने कहा था। वह चौंक गया था। दोनों आगे बढ़ गए थे। एक स्टाल में चाबियों के गुच्छे लटक रहे थे। वोहरा रुककर देखने लगा था। अनमने भाव से वह भी कुछ नमूने देखने लगा···तभी ख्याल आया था, क्यों न एक की-रिंग कुसुम के लिए ले ले।

उसने कागज पर कुसुम का नाम लिखकर दिया था। दुकानदार कम्पोज करने में लग गया, तब तक वह डिजाइन पसंद करता रहा। एक चौकोर प्लास्टिक का टुकड़ा उसे पसंद आया। उसने दुकानदार को बढ़ा दिया। दुकानदार ने कम्पोज किया हुआ नाम एक मशीन में लगा दिया। स्विच दबा दी। टाइप्स गर्म होने लगे। जब पूरी तरह गर्मी आ गई, तो उसने नीचे वह चोकोर टुकड़ा रख दिया। फिर एक हरा चमकीला कागज उस पर रखकर, टाइप को दबाया···और जब दुकानदार ने वह प्लास्टिक का टुकड़ा उसे दिया तो वहां एक नाम चमक रहा था—कुसुम।

—"कितने पैसे हुए ?"

—"दूसरी तरफ भी लिख दूं ?"

वह सोचने लगा था, अपना नाम लिखवा दे···फिर उसने मना कर दिया था।

वह चौकोर प्लास्टिक के टुकड़े को देखता है। जब उसने लौटकर, कुसुम को दिया था, वह उलट-पलटकर देखती रही थी—"दूसरी तरफ भी तुम्हें कोई नाम खुदवा लेना था।"

वह एकदम कहने जा रहा था कि मैंने अपना नाम लिखवाना चाहा था···फिर खामोश हो गया। कुसुम के मुंह से अपना नाम सुनने का मन हो आया था। उसे अपने करीब समेटकर उसने पूछा था—"किसका नाम ?"

की-रिंग से खेलती कुसुम स्थिर हो गई थी।

—"बोलो न।"

—"नहीं, कुछ नहीं। यही ठीक है। दूसरी तरफ खाली ही रहने दो···बस, एक अकेली कुसुम और कहीं कुछ नहीं···"

वह फिर रिंग से खेलने लगी थी। और वह एक ही बात सोच रहा था कि नाम लिखवाते वक्त उसने हरा रंग ही क्यों चुना···तभी कुसुम ने कहा था—"सुनो, यदि बुरा नहीं मानो तो एक बात कहूं···"

—"कहो न।"

—"इसे तुम अपने पास रख लो। अगली बार जब टूर पर जाना, तो दूसरी तरफ भी एक नाम खुदवा लेना।"

—"किसका नाम ?"

—"बेबी का···अनु का नाम।"

इस बार वह सिहर गया था। जानता था, फिर एक सवाल आएगा —"बेबी को ला दो न···अनु को ला दो न···" इससे पहले कि सवाल आए, उसने कहा था—"ठीक है। इसे सूटकेस में डाल दो। अगली बार अनु का नाम लिखवा दूंगा। अब बहुत नींद आ रही है···" करवट बदल कर उसने सोने का बहाना किया था।

की-रिंग वह मेज पर रख देता है। पास पड़ी कुर्सी पर बैठकर जूते

के फीते ढीले करने लगता है—"रामचन्दर···रामचन्दर···"

रामचन्दर आ जाता है ।

—"एक कप चाय । गरमागरम । फटाफट ।"

वह चाय की प्रतीक्षा करने लगता है । घड़ी देखता है—साढ़े सात । जल्दी-जल्दी जूते के फीते बांधने लगता है···और धीरे-धीरे तीसरी आत्मा उसके भीतर प्रवेश कर जाती है । रामचन्दर चाय रख देता है । वह शीघ्रता करता है । दुकान दस मिनट के अन्दर पहुच जाना है, वरना किसी और फर्म का रिप्रेजेंटेटिव पहले पहुच गया तो दुकानदार उसे पैसे दे देगा और उसके पहुंचने पर कहेगा—"आइए साहब, चाय पीजिए ।"

—"पहले हिसाब···"

—"नाश्ता मगवाऊ ?"

"······"

वह कमरे से बाहर आ जाता है । फिर हाथ में वही बैग, वही की-रिंग, वही सवाल—"बेबी को ला दो न··· अनु को ला दो न···"

और जब दोबारा कमरे में आता है, कपड़े बदलकर बिस्तर पर अकेला लेटता है तो चौथी आत्मा उसके भीतर जन्म ले चुकी होती है । वह सोना चाह कर भी सो नही पाता है···करवट बदल लेता है···ऐसी ही करवट वह घर मे भी बदल लिया करता है, जब कुसुम कहती है—*"बेबी को ला दो न···" उसकी समझ मे नही आता है, वह क्या करे···* किस तरह से अपनी मां, अपने पिता को कन्विंस करे । रिप्रेजेंटेटिव की ट्रेनिंग में एक बात पर जोर दिया गया था—किसी भी फर्म के लिए, अच्छी किताब से अधिक कीमती अच्छा रिप्रेजेंटेटिव होता है । अगर उसमें कन्विंस करने की कला है, तो वह रद्दी पुस्तक को भी पुश कर देगा··· और उसका लोहा सभी मानते है इस लाइन में । जब कोई रिप्रेजेंटेटिव किसी क्षेत्र में असफल हो जाता है, तो कम्पनी उसे ही भेजती है । जाते समय मालिक कहते हैं—"भई राधेलाल, कम-से-कम हजार कापियां तो भिजवा ही दो···मैं जानता हू, ये पहुचकर और कापियों के लिए तार करेगा···ही इज ए जीनियस ।" ···और होता भी ऐसा ही है । वह कालेज के हेड्स को कन्विंस कर लेता है···मगर वह, पिताजी और मां को कैसे

—"कितने पैंसे हुए ?"

—"दूसरी तरफ भी लिख दूं ?"

वह सोचने लगा था, अपना नाम लिखवा दे···फिर उसने मना कर दिया था।

वह चौकोर प्लास्टिक के टुकड़े को देखता है। जब उसने लौटकर, कुसुम को दिया था, वह उलट-पलटकर देखती रही थी—"दूसरी तरफ भी तुम्हें कोई नाम खुदवा लेना था।"

वह एकदम कहने जा रहा था कि मैंने अपना नाम लिखवाना चाहा था···फिर खामोश हो गया। कुसुम के मुंह से अपना नाम सुनने का मन हो आया था। उसे अपने करीब समेटकर उसने पूछा था—"किसका नाम ?"

की-रिंग से खेलती कुसुम स्थिर हो गई थी।

—"बोलो न।"

—"नहीं, कुछ नहीं। यही ठीक है। दूसरी तरफ खाली ही रहने दो···बस, एक अकेली कुसुम और कहीं कुछ नहीं···"

वह फिर रिंग से खेलने लगी थी। और वह एक ही बात सोच रहा था कि नाम लिखवाते वक्त उसने हरा रंग ही क्यों चुना···तभी कुसुम ने कहा था—"सुनो, यदि बुरा नहीं मानो तो एक बात कहूं···"

—"कहो न।"

—"इसे तुम अपने पास रख लो। अगली बार जब टूर पर जाना, तो दूसरी तरफ भी एक नाम खुदवा लेना।"

—"किसका नाम ?"

—"बेबी का···अनु का नाम।"

इस बार वह सिहर गया था। जानता था, फिर एक सवाल आएगा—"बेबी को ला दो न···अनु को ला दो न···" इससे पहले कि सवाल आए, उसने कहा था—"ठीक है। इसे सूटकेस में डाल दो। अगली बार अनु का नाम लिखवा दूंगा। अब बहुत नींद आ रही है···" करवट बदल कर उसने सोने का बहाना किया था।

की-रिंग वह मेज़ पर रख देता है। पास पड़ी कुर्सी पर बैठकर जूते

के फीते ढीले करने लगता है—"रामचन्दर···रामचन्दर···"

रामचन्दर आ जाता है।

—"एक कप चाय। गरमागरम। फटाफट।"

वह चाय की प्रतीक्षा करने लगता है। घड़ी देखता है—साढ़े सात। जल्दी-जल्दी जूते के फीते बांधने लगता है···और धीरे-धीरे तीसरी आत्मा उसके भीतर प्रवेश कर जाती है। रामचन्दर चाय रख देता है। वह शीघ्रता करता है। दुकान दस मिनट के अन्दर पहुंच जाना है, वरना किसी और फर्म का रिप्रेजेंटेटिव पहले पहुंच गया तो दुकानदार उसे पैसे दे देगा और उसके पहुंचने पर कहेगा—"आइए साहब, चाय पीजिए।"

—"पहले हिसाब···"

—"नाश्ता मंगवाऊं?"

"······"

वह कमरे से बाहर आ जाता है। फिर हाथ में वही बैग, वही की-रिंग, वही सवाल—"बेबी को ला दो न··· अनु को ला दो न···"

और जब दोबारा कमरे में आता है, कपड़े बदलकर बिस्तर पर अकेला लेटता है तो चौथी आत्मा उसके भीतर जन्म ले चुकी होती है। वह सोना चाह कर भी सो नहीं पाता है···करवट बदल लेता है···ऐसी ही करवट वह घर में भी बदल लिया करता है, जब कुसुम कहती है—"बेबी को ला दो न···" उसकी समझ में नहीं आता है, वह क्या करे··· किस तरह से अपनी मां, अपने पिता को कन्विंस करे। रिप्रेजेंटेटिव की ट्रेनिंग में एक बात पर जोर दिया गया था—किसी भी फर्म के लिए, अच्छी किताब से अधिक कीमती अच्छा रिप्रेजेंटेटिव होता है। अगर उसमें कन्विंस करने की कला है, तो वह रद्दी पुस्तक को भी पुश कर देगा··· और उसका लोहा सभी मानते हैं इस लाइन में। जब कोई रिप्रेजेंटेटिव किसी क्षेत्र में असफल हो जाता है, तो कम्पनी उसे ही भेजती है। जाते समय मालिक कहते हैं—"भई राधेलाल, कम-से-कम हजार कापियां तो भिजवा ही दो···मैं जानता हू, ये पहुंचकर और कापियों के लिए तू करेगा···ही इज ए जीनियस।" ···और होता भी ऐसा ही है। वह का के हेड्स को कन्विंस कर लेता है···मगर वह, पिताजी और मां को

कन्विस करे, कैसे ?…हर समय एक ही सवाल चक्कर काटता है—"बेबी को ला दो न…अनु को ला दोगे न ?"

एक बार उसने साहस कर कहा था—"पिताजी, अनु को ले जाने दीजिए। कुसुम बहुत याद करती है…वह इसे सगी बेटी की तरह प्यार करती है।"

पिताजी उसे एकटक देखने लगे थे। वह उनकी आंखों का सामना नहीं कर सका था। एक चुप्पी गर्द की तरह बैठ गई थी। आखिर उन्होंने ही कहा था—"बेटे, अनु तुम्हारी सम्पत्ति है। जब इसकी मां मरी थी…यह मुश्किल से बीस दिनों की रही होगी…तभी से हमने इसे पाला है…अब तो इसके बिना एक पल भी अच्छा नहीं लगता…ले जाओ, जाके डाल दो बहू की गोद में इस चार साल की बच्ची को…वह अपनी है, सगी मां-सा प्यार देगी… एक हम ही तो पराये हैं…"

वह चुप था। पिता के सामने चुप था और अब कुसुम के सामने भी चुप रहता है। वह अब तक यह तय नहीं कर सका है, कि उसे किसे कन्विस करना है…पिताजी को, मां को या कुसुम को…

तभी दरवाज़े पर दस्तक पड़ती है—"सो गए क्या ?"

वह समझ जाता है, सभी रिप्रेज़ेंटेटिव होटल लौट आए हैं। उठकर ा खोलता है। सामने पारस खड़ा है—"चलो यार, कपूर साहब के कमरे में सभी जुटे हैं। ताश का प्रोग्राम है।"

कमरे में ताला लगाकर, वह पारस के साथ हो लेता है। मुट्ठी में फिर की-रिंग है, यानी अब भी मुट्ठी में वही एक आग्रह—"बेबी को ला दो न…अकेला घर काटता है…बोलो, अनु को ला दोगे न ?"

उसे देखते ही शर्मा कहता है—"अरे यार, तू रात में देवदास क्यों बन जाता है ? दिन में हम सब तुझ से डरते हैं कि तू हमारी फर्म की किताब के पत्ते काट देगा…और रात में इस तरह सीरियस देखकर भी डर लगता है… तू रात में पीता-वीता तो नहीं ?…सुना है, कुछ लोग पीकर बड़-बड़ करने लगते हैं और कुछ लोग देवदास बन जाते हैं…तेरी तरह।"

मगर वह कुछ कहता नहीं। बस, मुसकरा देता है और मुट्ठी के भीतर के सवाल को महसूस करता रहता है।

—"अबे, बोल न कुछ। तू कॅन्वैसिंग के वक्त भी इसी तरह चुप रहता है ? समझ नहीं आता, तू हेड्स को कन्विंस कैसे कर लेता है। अच्छा चल, सबको खिला-पिला।"

वह चौंक जाता है— "क्यों ?"

—"फिर वही सवाल-जवाब···रामचन्दर···रामचन्दर···अरे भई, आठ चाय···मैं ही पिलाता हूं·· अपनी एलजेब्रा वाली किताब पिट गई, इस खुशी में।"

—"मतलब ?" कपूर चौंककर पूछते हैं।

—"कपूर साहब, इस देवदास ने सब कबाड़ा कर दिया। इस बार यह हाई स्कूल के लिए एक एलजेब्रा की किताब लेकर आया है ··कहा बुक्स एलाउंस होगी···प्राइवेट सोर्सेस से मैंने पता चला लिया है, इसकी किताब छः स्कूलों मे लग गई है ' अपन तो पिट गए···कल देखना, यह कम्पनी को तार करेगा—"सेन्ड थाउजेन्ड कॉपीज एलजेब्रा'' " और शर्मा हंसने लगता है।

उसे कोई खुशी नहीं होती है। सुबह का वक्त होता, तो शायद वह खुश हो जाता·· मगर इस चौथी आत्मा का क्या करे, जो रात शुरू होते ही उसके सामने घर लेकर खड़ी हो जाती है और कमरे में अकेली रोटी कुसुम उभर आती है एक सवाल लेकर—"बेबी को ला दो न ' अनु को ला दोगे न ?"

तभी कपूर कहते हैं—"अरे, बोहरा नहीं दिख रहा है ?"

—"मुजफ्फरपुर गया है।"

—"अपनी अम्मा के पास।" —और कपूर हो-हो कर हंसने लगते हैं।

—"क्या हुआ ?" पारस पूछता है।

—"बहुत हरामी है साला। मेरी बुजुर्गी से नाजायज फायदा उठा लेता है। एक बार मैं उसके एरिया मे घुस गया था। अपनी सायकालॉजी वाली किताब के लिए लेक्चरर को करीब-करीब कन्विंस भी कर लिया था कि बेटा आ धमका। दूर से ही चिल्लाया—'हैलो डैडी···'

जब नजदीक आया तो लेक्चरर पूछ बैठी— 'क्यों बोहरा साह॰

आपके डैडी हैं ?'

छूटते ही उसने कहा था—'यस मैडम, ही इज़ लेटेस्ट लवर ऑफ माई लेटेस्ट मदर···'

मैं तो सन्न। लेक्चरर मुंह पर पल्लू रखकर स्टॉफ रूम के भीतर।"

—"फिर क्या हुआ ?"

—"होना क्या था, उसके फर्म की किताव कॉलेज में लग गई और मैंने जो कन्विस किया, केम टू जीरो···"

ज़ीरो···सिफर···वह सोचता है, वह किसे कन्विस करे···अनु कभी कुसुम के पास रहती है तो कभी मां-वावू जी के पास। जव कुसुम के पास होती है तो गांव से चिट्ठियां आने लगती हैं—अनु को भेज दो और जव घर होती है···वह की-रिंग को देखता है···दूसरी तरफ खाली ही रहने दो···वस, एक अकेली कुसुम और कुछ नहीं···ज़ीरो···सिफर···शून्य।

एक वजे रात तक ताश। फिर सभी अपने-अपने कमरों में आ जाते है। वह भी अपने विस्तर पर आ जाता है। सोचता है, यह कैसी ज़िंदगी है···सुवह उठकर, हर कोई किसी का पत्ता काटना चाहता है···और रात, एक होटल या धर्मशाले के किसी कमरे में एक-दूसरे के लिए निःस्वार्थ भाव से पत्ते वांटता है···यह एक आत्मा की जगह, दूसरी आत्मा का जन्म लेना नहीं तो और क्या है !

सुवह उठकर, फिर वह और उसका वैग। दिन-भर भागा-भागी।

सचमुच छः स्कूलों में उसकी किताव एनाउंस हो गई। लिस्ट देखने के वाद, वह सवसे पहले पोस्ट ऑफिस आया। एक पोस्टमैन निकलता हुआ दिखा। उसे ख्याल आया, उसने कुसुम से चलते समय कहा था—"मैं जहां भी रहूंगा, पत्र डालता रहूंगा, मगर तुम्हें क्या पता दूं ! कव कहां रहना होगा, मुझे भी तो नहीं मालूम···आज पटना, तो कल भागलपुर, परसों दरभंगा···समस्तीपुर···गया या कहीं भी···" इसी तरह का वाक्य उसने कमला से भी कहा था। कमला मां वनने वाली थी। और जव दो महीने वाद वह घर पहुंचा था, तो कमला नहीं थी। उसकी मां की गोद में नन्हीं-सी अनु थी···न अनु के जन्म की खवर उसे मिली थी,

न कमला की मौत का समाचार। अगर ऐसा ही कुछ कुसुम के साथ हो गया तो···वह सर से पांव तक सिहर गया था फिर उसके साथ ही··· उसने जल्दी से अपना हाथ पॉकेट में डाला। प्लास्टिक कवर में उसका फोटो। फोटो के नीचे नाम और पता। थोड़ी-सी तसल्ली हुई। आइडेन्टिटी कार्ड को भीतर वापस रख दिया उसने। लेकिन उंगलियों पर, फिर उसी की-रिंग का ठण्डा स्पर्श·· बेबी को ला दो न···और कम्पनी को तार करते-करते उसने मन के भीतर भी एक तार जोड़ लिया।

महीने-भर बाद वह घर पहुंचा।

उसे देखते ही कुसुम खिल गई। कोट खूटी पर टांग कर, वह हाथ-मुंह धोने चला गया। जब फ्रेश होकर लौटा तो उसने देखा, कुसुम सूट-केस से कपड़े निकाल रही है।

—"तुमने कुछ देखा?"

—"क्या?"

—"की-रिंग।"

सचमुच कुसुम ने ख्याल नहीं किया था। उसने जल्दी से की-रिंग को हाथों में ले लिया।

—"तुम्हारी फरमाइश थी न···संयोग से भागलपुर में प्रदर्शनी लगी हुई थी। वहीं मैंने अनु का नाम लिखवा लिया है, दूसरी तरफ। अच्छा, सुनो, जल्दी से तैयार हो जाओ। मेरे और अपने कुछ कपड़े सूटकेस में डाल लो। अभी गांव चलते हैं।"

—"गांव?"—कुसुम चौंक गई।

—"हां, कल रविवार है। शाम तक अनु को लेकर लौट आएंगे। यहां के० जी० में डाल देंगे। अब काफी बड़ी हो गई है···गांव में रहकर वेस्ट हो रही है।"

कुसुम को जैसे पंख लग गये।

मां से मिलकर अनु हमेशा की तरह बहुत खुश हुई। पहले उसने कुट्टी की, फिर मिट्ठी। कुट्टी इसलिए कि मां उसे छोड़ गई थी और मिट्ठी

इसलिए कि मां आ गई थी ।

सोने के पहले उसे दूध मिला करता था, लेकिन आज उसकी ज़िद थी कि वह मां के हाथों के पराठे खाएगी ।

दोनों मां-वेटी चौके में पहुंच गयीं । मगर चौके में पहुंचकर अनु वदल गयी—"मैं पराठे वनाऊंगी । दादी जी ने मुझे सिखा दिया है ।"

—"ज़िद नहीं करते अनु वेटी, मैं वना देती हूं ।"

—"नहीं, मैं वनाऊंगी…"

—"वुलाऊं पापाजी को ?"

—"हां-हां वुला लो, मैं दादाजी को वुला लूंगी…दादी जी…दादा जी…"

—"चुप कर वावा । तू वना, मैं सेंकती हूं ।"—कुसुम हार गई । और अनु के वनाये टेढ़े-मेढ़े पराठे सेंकती रही ।

पराठे वन गए तो अनु ने कहा—"दादाजी के पास खाऊंगी…" और थाली उठाकर भाग गई—"दादाजी, पराठे खाओगे ? मैं खा रही हूं…"

—"ये पराठे हैं ?"

—"हां, मां ने वनाये हैं ।"

—"मैंने वनाये हैं ?" कुसुम टपक पड़ी ।

—"और नहीं तो मैंने वनाए हैं…दादाजी, आप मुझे शहर ज
दो । वहां रहकर मां को पराठे वनाना सिखा दूंगी…फिर आ जा
वापस…"

कुसुम का मन हुआ, अनु को सीने से लगा ले । चुम्मियों से उ
चेहरा भर दे ।

रविवार की शाम सारी तैयारियां हो गयीं । अनु के कपड़े सू
रख लिए गए । पिताजी और मां ने कोई आपत्ति नहीं की । व
कि अव कुसुम अकेली नहीं रहेगी…

गाड़ी रात आठ के करीव है । अभी छः वजे हैं ।…घर में ए
तैर रहा है । मांजी चौके में कुछ-कुछ वना रही हैं—अनु के लि
जी वीच-वीच में कहते हैं—"वहू…"

और कुसुम सारी बातें सुनती है। गिरह बांधती जाती है।

अब चलने का समय हो गया है। स्टेशन तक छोड़ने के लिए टमटम आ गया है। अनु सो गई है।

वह पिता के पैर छूता है—"जल्दी ही अनु को भेज देंगे···चिंता मत कीजिएगा।"

—"स्कूल से जुड़ने के बाद, भला कोई छूटा है बेटे। पहली, फिर दूसरी, फिर तीसरी···आगे···और आगे···" इसके आगे वे कुछ नहीं कह सके।

कुसुम ने पैर छुए तो बोले—"बेटी, मेरे बिस्तर पर सो रही है अनु। रोज मेरे साथ ही सोती रही·· उसे आहिस्ता से उठाना, जग जाएगी। बड़ी कच्ची नींद है···मैं रात में करवट भी लेता था, तो धीरे से ··" और उनकी आवाज भर्रा जाती है। कुसुम को लगा, उनके पांव भी कांप रहे हैं।

वह बिस्तर तक आई। अनु सो रही है दादाजी के तकिए पर। वह उठाने को होती है कि पिताजी कहते हैं—"बहू, जल्दी करो। गाड़ी का समय हो रहा है·· और हां, इसे तकिए की भी आदत है···मैं तो यूं ही सो लेता था···"

अचानक कुसुम कहती है—"नहीं बाबूजी, हम इसे नहीं ले जा रहे हैं। स्कूल में दो महीने बाद दाखिला होगा, फिर ले जाएंगे···अनु के कपड़े मैंने बिस्तर पर निकाल दिए हैं···" और वह सूटकेस लेने भीतर चली गई। जल्दी-जल्दी अनु के कपड़े सूटकेस से निकाल कर बाहर आ गई।

वह कुछ नहीं समझ पाता है · न तांगे में, न ट्रेन में, न तब, जब कुसुम कहती है—"हम अनु को नहीं लाएंगे···दो महीने बाद भी नहीं···कभी नहीं···वे लोग उसे बहुत प्यार करते हैं···मेरा क्या है, यहीं रह-कर संतोष कर लूंगी कि मैं सौतेली मां हूं···बच्ची को अलग रखना चाहती हूं···"

बस, उसे लगता है, उसी की तरह कुसुम भी अपने भीतर कोई लड़ाई लड़ रही है। घर पहुंचने पर, सोने से पहले वह सोचता है, तू

ने अच्छा ही किया जो अनु को गांव में छोड़ दिया···लेकिन बीच रात में नींद टूट जाती है। वह देखता है, कुसुम की-रिंग को अपने चेहरे से सटा कर रो रही है, रोये जा रही है···अब वह क्या करे···किसे कन्विंस करे, पिताजी को···मां को···या फिर कुसुम को···नहीं, उसमें कन्विंसिंग आर्ट है ही नहीं···वह कुछ नहीं कर सकता, कुछ भी नहीं···वह तो महज एक तीसरा नाम है, जो की-रिंग के किसी तरफ भी नहीं है···

अपना-अपना भय

घट जाने पर एक दर्द होता है। लेकिन सुमी अनुभव करती है, यह कटना नहीं है। कट जाने पर कोई हिस्सा जख्मी हो जाता है, लहू की कुछ बूँदें उभर आती हैं और ऐसा लगता है कि यह एक दर्द है और यहाँ हो रहा है। मगर सुमी सोचती है, यह कोई दूसरी किस्म का दर्द है ' न कोई हिस्सा कटा, न लहू की बूँदें उभरीं, फिर भी लगता है जैसे सारा शरीर छिला है कि एकदम नीम-जगी हो गई है।

वह चुपचाप छोटी कोठरी में खड़ी है। घर के लोग इसे छोटी कोठरी ही कहते रहे हैं। यह और बात है, कि घर की अन्य दो कोठरियाँ भी इसी तरह छोटी हैं ''कुल तीन छोटी-छोटी कोठरियों का घर ! इसी के लिए सवा सौ लग जाते हैं। जिस दिन तनख्वाह मिलती है, हर कोई खुश होता है। मगर एक सुमी है, कि गहरी उदासी में घिर जाती है। सवा सौ हाथों में लेकर भी वह अपने को एकदम खाली-खाली महसूस करती है। दूर तक खींची हुई रिक्तता ! किराये के बाद सौ पिताजी ले लेते हैं, और वह महीना-भर पैदल चलकर ऑफिस आती-जाती रहती है। जिस दिन वेतन मिलता है, सुनीता अवश्य टोकती है—"क्यों सुमी, आज तो कम-से-कम टैक्सी में साथ चलोगी न ?"

—"ना ! मुझे बाजार में रुकना है। अपने लिए कुछ जरूरी सामान लेना है ' " लेकिन वह जानती है, उसे कुछ भी नहीं लेना है। और वह बाजार की तरफ वाला रास्ता पकड़ लेती है। वह जानती है, यह रास्ता उसे काफी लम्बा पड़ेगा। काफी घूमना पड़ेगा। लेकिन यह कितनी बड़ी विवशता है, कि अपने को छिपाने के लिए लम्बी राह से गुजरना होता है, जब कि आज समय की कमी के कारण हर चीज सिकुड़ कर छोटी

होती जा रही है। यहां तक कि समय भी छोटा हो गया है।

सुमी चुपचाप चलती रहती है। चलते रहना भी एक जीवन है, जो सुमी जैसों को ही नसीब होता है। अक्सर हां बाजार में किसी न किसी से भेंट हो जाती है—"क्यों सुमी, कुछ खरीदना है?"

सुमी जानती है, अगर हां कह देगी तो उसे आग्रह मिलेगा—"हम भी मार्केटिंग के लिए ही निकले हैं। आओ, आज तुम्हारी पसंद से शॉपिंग कर लें।"

मगर सुमी की भी कोई पसंद है! जब पिताजी एक साधारण से क्लर्क थे, वही खादी की मोटी साड़ी ला दिया करते थे। खादी का कपड़ा भी। मां घर की मशीन पर लम्बी बांहों का ब्लाउज सिल देतीं और वह पहनकर स्कूल चली जाती। उसे याद है, एक बार उसकी किसी सहेली ने लाल पर सफेद धारियों वाली पेंसिल और हरी-हरी कापियां खरीदी थीं। घर आकर उसने पिताजी से यही कहना चाहा था। मगर एक छोटा-सा वाक्य कहने में उसे कितना तो भय लग रहा था। मां को भी अगर कुछ कहना होता, तो कई-कई बार पिताजी के पास जातीं···मगर साहस की कमी से या उनके बुझे-बुझे चेहरे के कारण कुछ भी नहीं कह पातीं! और जब ढेर-सारी सांसों को अपनी छाती में भरकर, सुमी ने अपनी फरमाइश पिताजी के सामने रख दी, तो वे उसे देखते रहे। कुछ बोले नहीं। सुमी को अपने ही कहे वाक्य से भय लगने लगा।···थोड़ी देर बाद पिताजी चले गए। और जब लौटे, तो एक साधारण-सी पेंसिल और दो थोड़ी फटी-कटी कॉपियां। ये वस्तुएं सुमी को न देकर, उन्होंने मां को थमा दीं-- "सुमी की मां, ये सस्ती किस्म की पेंसिल और फुटपाथों पर फटी-फटी कम कीमत में बिकती कापियां, सुमी को दे दो···उसके सामने एक पिता की हैसियत से जाते हुए मुझे भय लगता है। वह तो बच्ची है सुमी की मां, लेकिन तुम मेरी विवशता अनुभव कर सको··' और वे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना चुपचाप अपने कमरे में चले गए। सुमी को याद है, सुमी ने सब सुना था। सब समझा था। उसी वक्त। और जब मां ने आकर कहा—"देख बेटी, कितनी सुन्दर पेंसिल···और ये कापियां···" उसने अनुभव किया था, मां को इतना-सा वाक्य भी कहने

में कष्ट हो रहा है। और जब उन्होंने पूछा—"है न तेरी पसन्द की···" उसने स्वीकृति में सिर हिलाया और फिर, पिताजी की पसन्द उसकी पसन्द बनकर रह गई।

अब भी पिताजी ही कपड़े लाते और वह मां की पुरानी थानी मशीन पर लम्बी बांहों का ब्लाऊज सिलती। एक बार कपड़ा कुछ छोटा पड़ गया था। कुछ नमूना निकालकर उसने ब्लाउज निकाल लिया। पहन कर ऑफिस जाने लगी, तो हमेशा की तरह पिताजी के पास आई—"जा रही हूं।"

हरदम आंखें बन्द किए 'हूं' कहने वाले पिताजी ने आज उसे देखा। सुमी को भय लगने लगा। वह जानती है, पिताजी आंखें खोले छत को एकटक निहारते रहते है, मगर वह जैसे ही कमरे में आती—'पिताजी जा रही हूं···' तो आंखें बन्द कर 'हूं' कर देते। उसे देखते भी नहीं। सुमी समझती है, अब तक वे उससे डरते रहे। बेटी की कमाई खाते-खाते वे अपने को इतना तुच्छ और छोटा अनुभव करने लगे हैं, कि भर-आंख उसे देख भी नहीं पाते। मगर आज सुमी को भय लग रहा था। और जब वह घूम गई, उसकी पीठ पिताजी की तरफ हुई, तो उन्होंने कहा—"सुमी, हमारे घर मे जो रामायण पड़ी है न, उसकी जिल्द को कीड़े खा गए हैं। अब वह भी और पुस्तकों में मिलकर उन जैसी ही लगती है·"

सुमी चुपचाप उलटे पैर छोटी कोठरी में लौट आई। पिताजी ने जो कहा था, उसने समझा था। तंग और दूर तक उठे ब्लाउज को बदलकर उसने स्वयं महसूस किया, कि लड़की किताब की तरह है, जिसके विषय में पहला निर्णय जिल्द देखकर किया जाता है।

लेकिन वह क्या करे! साड़ी, ब्लाऊज के अलावा भी उसे कुछ और चाहिए···उसने अब तक जैसे-तैसे अपने हाथों ही मिलकर काम चलाया है। कई बार खरीदना भी चाहा। मगर पूरा का पूरा वेतन वह पिताजी को देती आ रही है। एक बार उसने सोचा भी था कि सिर्फ दो रुपये रख ले···मगर उसे लगा, अगर पिताजी पूछ लेंगे, तो वह क्या उत्तर देगी। सो जैसे पिताजी के आगे वह झूठ भी नहीं बोल पाएगी और सच भी नहीं। फिर पिताजी सोचेंगे, शायद उनके पास अब कोई अधिकार शेष

नहीं कि हिसाब लें···इसलिए तो सुमी चुप है।

बस पिताजी के यही सब सोचने से तो सुमी को भय लगता है। उनकी अपराधी जैसी कांपती आंखें वह झेल नही पाती। आंखों को सहना भी कितना कठिन होता है। कितनी बार वे रिश्ते के लिए निकले। लड़के आए। सुमी अपने को अच्छी तरह से ढंकती रही। हर बार आइने में देखती रही कि कोई हिस्सा दिख तो नहीं रहा है और पूरी तरह से सन्तुष्ट होकर सामने जाती रही। लड़के चले जाते। फिर पिताजी पत्रों की प्रतीक्षा किया करते। और जिस दिन उत्तर आता—"क्षमा करें, आपकी लड़की हमें पसन्द नहीं···" वे हमेशा की तरह चारपाई पर लेट कर सूनी-सूनी आंखों से छत को एकटक देखा करते। जब वह ऑफिस से लौटती तो उनकी आंखों में भीख मांगने जैसी विवशता को देखकर ही समझ जाती कि क्या उत्तर आया है।

वह चुपचाप अपने कमरे में चली जाती। कपड़े बदलकर चूल्हे में आंच देती। चाय बनाकर एक कप पिताजी की मेज़ पर रख देती। और उस दिन ऐसा होता, कोई किसी से कुछ नहीं बोलता। दोनों चुप-चुप खाना खाते। फिर पिताजी जल्दी ही सो जाते···मगर वह जानती है, वे सोते नहीं हैं, हमेशा की तरह सूनी-सूनी आंखों से रात में न दिखने वाली छत को टटोलते रहते हैं।

और सुमी अब भी छोटी कोठरी में कैद है। आज रविवार है। वह अपने पुराने ब्लाउज़ की बांह ठीक कर रही थी, कि यकायक पिताजी आए। कांपते हाथों से एक बण्डल थमा कर भयभीत स्वर में बोले—"बेटी रहने दे सिलाई। सामने के कमरे में एक लड़का आया है। बड़ी मुश्किल से माना है। तू तैयार होकर उससे बातें कर···मैं कुछ लेने जा रहा हूं···" और वे थरथराते पैरों से वापस लौट गए।

छोटी कोठरी में आकर सुमी ने बण्डल खोला···उसके सामने पिताजी के कांपते हाथ उभर आए और उसने महसूस किया, उसके पिताजी अब एकदम टूट गए हैं। टूटन की आखिरी हद पर खड़े होकर बेटी के ब्याह की भीख मांग रहे हैं···वह समझ गई, पिताजी कुछ भी लाने नहीं गए हैं, बल्कि

इस भय से भाग गए हैं, कि यदि वह आखें उठाकर उन्हें देखेगी, तो वे सामना नहीं कर सकेंगे···उसे लगा, उसका सारा शरीर छील दिया गया है·· और वह बिना बांहों के उस छोटे-से ब्लाउज में अपना मुंह छिपाकर इस भय से सिमकने लगी, कि इतना करने पर भी यदि लड़के ने उसे अस्वीकार दिया, तो कहां से वह इतना साहस लाएगी कि पिताजी के सामने फिर खड़ी भी हो सके···

नहीं कि हिसाब लें···इसलिए तो सुमी चुप है।

बस पिताजी के यही सब सोचने से तो सुमी को भय लगता है। उनकी अपराधी जैसी कांपती आंखें वह झेल नहीं पाती। आंखों को सहना भी कितना कठिन होता है। कितनी बार वे रिश्ते के लिए निकले। लड़के आए। सुमी अपने को अच्छी तरह से ढंकती रही। हर बार आइने में देखती रही कि कोई हिस्सा दिख तो नहीं रहा है और पूरी तरह से सन्तुष्ट होकर सामने जाती रही। लड़के चले जाते। फिर पिताजी पत्रों की प्रतीक्षा किया करते। और जिस दिन उत्तर आता—"क्षमा करें, आपकी लड़की हमें पसन्द नहीं···" वे हमेशा की तरह चारपाई पर लेट कर सूनी-सूनी आंखों से छत को एकटक देखा करते। जब वह ऑफिस से लौटती तो उनकी आंखों में भीख मांगने जैसी विवशता को देखकर ही समझ जाती कि क्या उत्तर आया है।

वह चुपचाप अपने कमरे में चली जाती। कपड़े बदलकर चूल्हे में आंच देती। चाय बनाकर एक कप पिताजी की मेज़ पर रख देती। और उस दिन ऐसा होता, कोई किसी से कुछ नहीं बोलता। दोनों चुप-चुप खाना खाते। फिर पिताजी जल्दी ही सो जाते···मगर वह जानती है, वे सोते नहीं हैं, हमेशा की तरह सूनी-सूनी आंखों से रात में न दिखने वाली छत को टटोलते रहते हैं।

और सुमी अब भी छोटी कोठरी में कैद है। आज रविवार है। वह अपने पुराने ब्लाउज़ की बांह ठीक कर रही थी, कि यकायक पिताजी आए। कांपते हाथों से एक बण्डल थमा कर भयभीत स्वर में बोले—"बेटी रहने दे सिलाई। सामने के कमरे में एक लड़का आया है। बड़ी मुश्किल से माना है। तू तैयार होकर उससे बातें कर···मैं कुछ लेने जा रहा हूं···" और वे थरथराते पैरों से वापस लौट गए।

छोटी कोठरी में आकर सुमी ने बण्डल खोला···उसके सामने पिताजी के कांपते हाथ उभर आए और उसने महसूस किया, उसके पिताजी अब एकदम टूट गए हैं। टूटन की आखिरी हद पर खड़े होकर बेटी के व्याह की भीख मांग रहे हैं···वह समझ गई, पिताजी कुछ भी लाने नहीं गए हैं, बल्कि

इस भय से भाग गए हैं, कि यदि वह आंखें उठाकर उन्हें देखेगी, तो वे सामने नहीं हो कर सकेंगे···उसे लगा, उसका सारा शरीर छील दिया गया है···और वह बिना बाहों के उस छोटे-से ब्लाउज में अपना मुंह छिपाकर इस भय से सिसकने लगी, कि इतना करने पर भी यदि लड़के ने उसे अस्वीकार किया, तो कहां से वह इतना साहस लाएगी कि पिताजी के सामने फिर खड़ी भी हो सके···



उजाले का चेहरा

प्लेटफार्म पर जैसे कोई आदमियों को लेकर एक ऊनी दुशाला बुन रहा हो •••एक-दूसरे पर गिरते-भागते लोग, न बनते-बिगड़ते फंदों की तरह । वह बड़ी कठिनाई से अपने को बचाने की चेष्टा कर रहा था ।

उसने सोचा, यही स्टेशन था। वह पहले-पहल जब यहां आया था, इसी तरह गाड़ी रुकी खड़ी थी। न कोई भाग-दौड़, न कोई रेल-पेल। वह कितनी आसानी से, इतमीनान के साथ उतरा था। दूर तक खाली-खाली लेटे प्लेटफार्म को उसने देखा था। बस, दस-पांच लोग चढ़ने वाले थे और शायद इतने ही उतरने वाले।

उसने एक आदमी से समय पूछा। मगर वह तेज़ी से आगे निकल गया। शायद उसके पास समय नहीं था।

और उसने तब भी समय ही पूछा था। जिससे उसने पूछा था, वह एक कुली किस्म का आदमी था। उसने कहा था, आओ भैया बैठो। थोड़ा जिरा लो! कहां से आ रहे हो? उसने बताया था। मगर वह नहीं समझा। उसके नही समझने पर, उसने उसे एकदम गंवार और अपने को काफी समझदार समझा था। एक बार फिर, उसने उसे प्रान्त के भेद को समझाया, मगर वह फिर नहीं समझ सका। चुपचाप खैनी लटाता रहा। जब खैनी तैयार हो गई, तो उसने उसे देकर सूरज को देखा था, और अन्दाज़ से कोई समय भी बताया था। तभी एक मुसाफिर ने हांक दी और वह उठकर चला गया। जब कुली किस्म का आदमी चला गया, तब वह स्टेशन से बाहर आया था। सामने मैदान जैसा खुला-खुला था। सिर्फ दो टमटम खड़े थे। उन्हें कोई सवारी नहीं मिली थी। दोनों घोड़ों के मुंह खुले थे और वे सिर झुकाकर घास खा रहे थे। उन्हें जोतने वाले आराम

से एक वृक्ष के नीचे बीड़ी पी रहे थे।

यात्रियों का हंगामा और बढ़ गया था। किसी तरह अपने को बचा-कर वह बाहर आया। बाहर आने के इस क्रम में वह कई बार गिरते-गिरते बचा। एक बार तो एक आदमी ने चिढ़कर कहा था—'जाने सरकार इन भिखमंगों पर कब रोक लगाएगी!' वह एकदम सन्न होकर, सुन्न हो गया था... जैसे बिजली का जोरदार झटका और फिर लाश! उसे लगा, अब वह केवल अपने शव को ही ढो रहा है और उस खन्दक या गढ़े की तलाश में है, जहां वह इसे डालकर मुक्त हो जाए, मगर उसे तो अपने उस छोटे-से कस्बे की तलाश थी, जहां कभी मिशन के लोगों ने एक चिट्ठी देकर उसे फादर फ्रेंडो के पास भेजा था... वही छोटा-सा, पवित्र-पवित्र उसका कस्बा जिसकी उसे तलाश थी।

उस समय वह मुश्किल से बीस का रहा होगा। फादर फ्रेंडो को एक युवक की खोज थी, जो मैजिक-लैन्टर्न दिखाने में उनकी मदद कर सके। गली-गली घूमकर उनके साथ ईसा मसीह के सम्बन्ध में लोगों को बता सके। वह पूरी तरह से फादर के काम आया था...

उसने प्लेटफार्म से बाहर देखा। ढेर-सारे रिक्शे। टैक्सियां। दूर तक फैले हुए मकान। मकान-दर-मकान। वह अपनी उन गलियों को खोजने लगा, जहां वह शाम होते ही, झाड़ू लगाकर एक बड़ी-सी दरी बिछा दिया करता था। इस काम में गली के लगभग सभी बच्चे उसकी मदद किया करते थे। सब की आंखों में चमक हुआ करती थी। पेट्रोमैक्स जलाकर वह रोशनी बिखेर देता था। उजाले की चादर पर उछल-कूद शुरू हो जाती थी। फिर, फादर फ्रेंडो के आते ही शोर और बढ़ जाता। वे पहले बच्चों को मिठाई बांटते। तब तक वह प्रोजेक्टर का मुंह एक सादी दीवार की तरफ कर देता। मैजिक-लैन्टर्न के बक्स में पेट्रोमैक्स डालकर स्लाइड्स दिखाता। फादर एक किनारे खड़े होकर, अपनी लंबी-सी छड़ी से बतलाते जाते—ये उड़ाऊ पुत्र है, ये लाजर जिसे यीशु मसीह ने मुर्दों के बीच से उठाकर जिंदा किया, ये बादशाह हेरोदेस है, जिसने ढेर-सारे बच्चों को कत्ल करवा दिया, ये...ये और ये...

और उसने सुना, वही शोर। उससे भी बढ़कर हंगामा। पलट कर

देखा, कोई सिनेमा हॉल था। लोग टिकट के लिए भगदड़ मचाए हुए थे। उसने अपने चश्मे को उतारकर शीशे को साफ किया। हॉल की दीवार से सटे, एक विजली-खम्भे के ऊपर के तारों को उसने देखने की कोशिश की। वह धीरे से मुस्कराया। मगर तुरंत उसकी वह मुस्कान कहीं खो गई! वहां मार-पीट हो गई थी। उसने महसूस किया, उसने इन आंखों को निकट से नहीं देखा है, मगर पहले जब वह ज़मीन साफ कर दरी विछाया करता था तो वच्चों की आंखों में एक खास किस्म की चमक हुआ करती थी···परन्तु आज, इन वड़े लोगों की आंखों में वह चमक नहीं होगी, कुछ होगी तो युद्ध जैसी कोई भावना।

वह आगे वढ़ आया। ज़मीन पहले पथरीली थी। वड़े-वड़े रोड़े थे। कई वार उसके अंगूठे, ठेस लगने से ज़ख्मी हुए थे। इन पर वैलगाड़ियां चलती थीं। टमटम चला करते थे। इन सवारियों को जानवर खींचा करते थे। मगर आज सड़कें पक्की वन गई हैं। एक आदमी रिक्शा खींचता हुआ सामने से निकल गया। उसने रुककर ज़मीन को देखा। सड़क से सटकर ही, एक मिल चल रही थी। यह आटे की मिल थी। भीतर औरतें आपस में झगड़ रही थीं। कई मर्द भी शोर कर रहे थे। हर किसी को जल्दी मची थी। उसने सोचा, जव वह नया-नया आया था, अपने कंधे पर मैजिक-लैन्टर्न वक्स और हाथ में पेट्रोमेक्स लटकाए हुए, वह फादर फ्रेंडी के साथ इन जगहों से गुज़रता था, तो जहां-तहां उसे औरतें जांता चलाती हुई दिख जाया करती थीं। वे कोई लोक-गीत गाया करती थीं। उनकी कोशिश रहती थी, कि सव मिल कर गेहूं को पीसें। इस वार फिर, उसने विजली के खम्भे को देखा। उस तार को भी देखने की कोशिश की जो मिल के भीतर जाता था।

वह धीरे-धीरे चलने लगा। उसकी कमर दुखने लगी थी। उसे आश्चर्य हो रहा था, उसने इतना मार्ग तय कर लिया, मगर किसी ने भी उसे नहीं पहचाना··

उसे प्यास महसूस हुई। वह एक नल के निकट आ गया। पानी तेज़ी से वह रहा था। कितनी ही वाल्टियां कतार में लगी थीं। यहां भी शोर था। वह साहस नहीं वटोर पा रहा था कि कुछ कहे···डरी-डरी आंखों

से उमने इधर-उधर देखने की कोशिश की। यहीं कहीं कोई कुआं या पहले। उस कुएं मे मुहल्ले-भर की औरतें पानी भरा करती थी। कितनी मिलत थी·· कि झटाक मे किसी ने किसी की बाल्टी उठाकर फेंक दी। वह इतना डर गया, कि बिना पानी मांगे आगे बढ गया। वह चुपचाप चल रहा था। उसके कंठ में एक तरह की जलन हो रही थी। यह जलन उस वक्त भी हुआ करती थी, जब वह थककर पसीने से तर हो जाया करता था और किसी किनारे के समीप खड़ा हो जाता था। आप से आप पानी से भरी कोई बाल्टी उसके लिए झुक जाया करती थी ··उसने कांपती आंखों से एक बार फिर बिजली के तारों को देखा, जो उसके ऊपर बुरी तरह से छाए हुए थे ··इस बार एक अजीब-सी कपकंपी उसके तमाम जिस्म मे भर गई।

वह अब भी चल रहा था। मगर उसे लग रहा था, वह अपने पैरों को फेंक रहा है···

रेडियो की एक दुकान से गुजरते-गुजरते वह ठिठक गया। समाचार हो रहे थे, परन्तु कोई सुनने वाला नहीं था। रेडियो यूं ही चीखे जा रहा था। बेमानी! उसे ख्याल आया, जब वह पहले-पहल आया था, खबरों का अपना अलग व्यक्तित्व था। वे इस प्रकार बरबाद नहीं होते थे। शाम के समय, मिडिल स्कूल के मास्टर जी एक पुरानी-सी चौकी पर पालथी मार कर अखबार पढ़ते थे। लोग उन्हें घेर कर बैठते थे। साथ-साथ उनकी टिप्पणी भी होती थी।

रेडियो अब भी चीखे जा रहा था। उसने घूमकर फिर इस शहर को देखा, मगर उसका वह कस्बा उसे कहीं नहीं मिल रहा था। उसने गर्दन सीधी कर ली। वह दुखने लगी थी। उसे स्वयं पर आश्चर्य हो रहा था, उसे इस तलाश की सनक कैसे सवार हो गई···फादर डेलो के सिर्फ इतना पूछने पर कि क्या वह कभी फादर फ्रैंडो के साथ किसी कस्बे मे प्रचार का काम किया करता था, तो उसने हां किया था और फादर ने उसे बताया था कि उसका कस्बा अब एक बड़ा शहर बन गया है। वहां बड़े-बड़े कारखाने खुल गए हैं, ऊंची इमारतें बन गई हैं···और जिस दिन से फादर ने ऐसा कहा था, वह उसी दिन से इस कोशिश मे था, कि फिर

अपने उस छोटे से कस्बे में जाए, उसे महसूस करे, देखे।

वह अब भी चल रहा था। सामने गिरजा-घर दिखा। उसने श्रद्धापूर्वक सिर झुकाया। ध्यान से देखा, वह पहले जैसा ही छोटा था···पहले से भी अधिक छोटा। अगल-बगल बड़ी-बड़ी इमारतें बन गई थीं और यह एकदम बौना लग रहा था। उसे ख्याल आया, वह अपनी पत्नी के साथ इसमें आया करता था।

पत्नी की याद आते ही उसका चेहरा विचित्र घृणा से विकृत हो गया। मिशन वालों ने उसे एक छोटा-सा मकान रहने के लिए दिया था। फादर फ्रेंडी ने उसकी शादी करवा दी थी। अब वह हमेशा के लिए इस कस्बे का बनकर रह गया था। फादर के साथ बराबर लगा रहता। उसकी पत्नी हमेशा खांसा करती। और एक दिन, जब फादर फ्रेंडी का अचानक देहान्त हो गया, तो ढेर-सा अंधेरा उसके आगे फैल गया।

इस अंधकार को दूर करने के लिए वह एक पराये शहर में चला गया। वहां बिजली कम्पनी में उसे नौकरी मिल गई। फिर भी वह समय निकालकर अपनी पत्नी के पास आया करता था। पत्नी दमे की शिकार थी। वह भरसक कोशिश करता था कि उसकी गृहस्थी टूटने नहीं पाए। परंतु एक रात, जब वह सो रहा था, खांसी से परेशान उसकी पत्नी कुएं में कूद गई। सुबह, पुलिस ने उस पर ही संदेह किया कि उसने पत्नी की हत्या की है। फिर भी, कोई ठोस सबूत नहीं मिला और वह छोड़ दिया गया। मगर वह ऐसा अनुभव करता था, जैसे वह अपराधी है, उस पर एक खून का इल्जाम है और वह छोड़ दिए जाने के बावजूद लोगों के आगे बेगुनाह नहीं बन सका है···उसका मन होता, वह कस्बे से भाग जाए।

वह फिर चलने लगा।

शाम हो चुकी थी। रास्ते की सारी बत्तियां जल गई थीं। अब वह अपने उसी पुराने मकान के सामने खड़ा था। उसका मकान, जो पहले बीच में लगता था, अब एक किनारे लगता था। उससे हटकर एक कोठी बन गई थी। कोठी में हर तरफ जलती हुई बत्तियां थीं। जिस मकान में वह रहता था, उसे लगा, बहुत नहीं बदला है···पहले, वह इसी मकान के सामने की जमीन को पानी छिड़ककर साफ करता था। प्रत्येक रविवार,

फादर फ्रेंडी प्रेयर-मीटिंग किया करते थे। उनके लिए एक पुरानी-सी कुर्सी और एक तीन टांगों वाली मेज वह लगा दिया करता था। फादर पवित्र वचन बोलते थे, योशु मसीह के वचन···तभी तक चपरासी क़िस्म का आदमी उसके करीब आया····"क्या है ? साहब नहीं हैं। मिलना है तो आफिस मे आना · " फिर जाते-जाते खुद ही पलट आया—"मगर सुनो, अगर कुछ माल-पानी है तो मैं एक घण्टे के अंदर मुलाकात करवा सकता हू···निकालो · अरे बाबा जल्दी करो···"

यह एकदम अपरिचित आवाज उसे अपने ही घर से सुनाई पड रही थी, जहां वह वर्षों रह चुका था, जहा उसने फादर फ्रेंडी की दी हुई एक तख्ती लटका रखी थी · होम, स्वीट होम !

उसके गले के भीतर भयंकर जलन होने लगी। वह कुछ भी उत्तर नहीं दे सका। वह सोच ही नहीं पाया था कि क्या कहे···और उस आदमी ने डपटकर कहा—"चोर उचक्का कहीं का···निकल जा, वरना रपट लिखवा दी तो सड़ता रहेगा···हरामी !"

उसने पैर उठाने की कोशिश की। वे उठे नहीं। बर्फ मे धस गए थे जैसे। सारी शक्ति बटोरकर उसने अपने को आगे की ओर धकेल दिया ···आगे···आगे और आगे, कि एकदम रुक गया। वही पुलिया। पुलिया के पास वाला वही बिजली का खम्भा · तब इस कस्बे में ढिबरी जलती थी। लालटेन बरती थी। गैसबत्ती होती थी · कि एक दिन वह आया। उसके साथ बड़े-बड़े कई अफसर आए थे। एक सीढ़ी के सहारे चढकर वह खम्भे पर काम कर रहा था। बच्चे नीचे घेरे खडे थे। बडे लोगों की भीड थी। औरतें पेड़ के पीछे से मगल गा रही थी। और जब, उसने तार जोडे तो बिजली की रोशनी पहली बार कस्बे मे फैल गई। बच्चे शोर करते हुए दौडने लगे। वह खम्भे से उतरा तो उसकी आरती उतारी गई। थाली की पहली मिठाई उसे दी गई थी ··अफसरों ने कहा—"अब इस बिजली से मिलें चलेंगी, चक्कियां चलेंगी, जगह-जगह नल होंगे और इन सब के पीछे तुम होगे मेकेनिक · "

उसने गिरते अंधेरे के बीच अपने उसी पुराने कस्बे को खोजने की कोशिश की। उसने देखा, पुलिया के पास वाला खम्भा···वह थरथराते

पैरों से आगे बढ़ा। उसके हाथ उसे छूने के लिए कांप रहे थे···उसे लग रहा था, वह अपने कस्बे के एकदम निकट आ गया है···एकदम करीब··· बस, दो कदम चलेगा और अपने कस्बे में आ जाएगा, कि तभी खम्भे के नीचे लेटा हुआ एक कुत्ता उस पर गुर्रा कर झपटा · वह लड़खड़ाकर गिरने लगा, गिरते समय उसकी आंखों के आगे ऊंची-ऊंची इमारतें घूम गईं, बड़ी-बड़ी मिलों की डरावनी आवाजें चीख बनकर उसके कानों में भर गईं और उसे महसूस हुआ, उसका वह छोटा-सा प्यारा कस्बा इन बड़ी-बड़ी चीजों की भीड़ में कहीं खो गया है, अब इस धरती पर नहीं है ···कहीं भी नहीं है शायद !

एक दूसरा आकाश

अब जो अवसर होना है, वह एक बार अजाने हो गया था।

छुट्टियों में घर गई थी। सुबह-सुबह पहुंची। मेरा कमरा अलग था। मेरे पहुंचने के बाद हमेशा की तरह कमरा खोला गया। फिर सफाई शुरू हो गई। पापा सामने ईजी-चेयर निकालकर अखबार पढ़ रहे थे। लेकिन मां बार-बार किचिन से निकलकर एक बार कमरे को देख लिया करती और कोई न कोई सुझाव देकर जाती।

मैं ब्रश करती हुई सामने आ गई।

पापा कुछ बोले नहीं। चुपचाप आंखें नीची किए पढ़ते रहे। मैंने ही टोका, "अब पैर का दर्द कैसा है ?"

"बस, ठीक है।" वे उसी तरह पढ़ते रहे।

मेरे भीतर जैसे कुछ टूट गया ! ये ही पापा बराबर कहा करते थे, "जब आदमी में कोई कमजोरी हो तो किसी से आंखें मिलाकर बातें नहीं करनी चाहिए। लाख अपने को ऊपर से मजबूत बनाकर प्रस्तुत करने पर भी आंखों से वह वीकनेस झलक जाती है, जिसे आदमी छिपाना चाहता है।" ऐसी कितनी ही बातें पापा तब कहा करते थे, जब वे जज थे।

ब्रश करता हुआ मेरा हाथ अपने आप रुक जाता है। मैं अनुभव करती हूं, अखबार कांप रहा है। पापा की आंखें दीख नहीं रही हैं, लेकिन वह वीकनेस···और मैं बिना कुछ बोले बाथरूम की तरफ मुड़ गई थी।

शाम निपु से मिलने गई।

उसकी जिद थी कि मैं खाना उसके साथ खाकर जाऊं। लेकिन मेरा मन था, हमेशा की तरह पापा की बगल में बैठकर खाऊं।

पैरों से आगे बढ़ा। उसके हाथ उसे छूने के लिए कांप रहे थे···उसे लग रहा था, वह अपने कस्बे के एकदम निकट आ गया है···एकदम करीब··· बस, दो कदम चलेगा और अपने कस्बे में आ जाएगा, कि तभी खम्भे के नीचे लेटा हुआ एक कुत्ता उस पर गुर्रा कर झपटा · वह लड़खड़ाकर गिरने लगा, गिरते समय उसकी आंखों के आगे ऊंची-ऊंची इमारतें घूम गईं, बड़ी-बड़ी मिलों की डरावनी आवाज़ें चीख बनकर उसके कानों में भर गईं और उसे महसूस हुआ, उसका वह छोटा-सा प्यारा कस्बा इन बड़ी-बड़ी चीजों की भीड़ में कहीं खो गया है, अब इस धरती पर नहीं है ···कहीं भी नहीं है शायद !

एक दूसरा आकाश

अब जो अक्सर होता है, वह एक बार अंजाने हो गया था।

छुट्टियों में घर गई थी। सुबह-सुबह पहुंची। मेरा कमरा अलग था। मेरे पहुंचने के बाद हमेशा की तरह कमरा खोला गया। फिर सफाई शुरू हो गई। पापा सामने ईजी-चेयर निकालकर अखबार पढ रहे थे। लेकिन मां बार-बार किचिन से निकलकर एक बार कमरे को देख लिया करती और कोई न कोई सुझाव देकर जाती।

मैं ब्रश करती हुई सामने आ गई।

पापा कुछ बोले नही। चुपचाप आखें नीची किए पढ़ते रहे। मैंने ही टोका, "अब पैर का दर्द कैसा है?"

"बस, ठीक है।" वे उसी तरह पढ़ते रहे।

मेरे भीतर जैसे कुछ टूट गया! ये ही पापा बराबर कहा करते थे, "जब आदमी में कोई कमजोरी हो तो किसी से आखें मिलाकर बातें नही करनी चाहिए। लाख अपने को ऊपर से मजबूत बनाकर प्रस्तुत करने पर भी आखों से वह वीकनेस झलक जाती है, जिसे आदमी छिपाना चाहता है।" ऐसी कितनी ही बातें पापा तब कहा करते थे, जब वे जज थे।

ब्रश करता हुआ मेरा हाथ अपने आप रुक जाता है। मैं अनुभव करती हूं, अखबार कांप रहा है। पापा की आखें दीख नही रही हैं, लेकिन वह वीकनेस···और मैं बिना कुछ बोले बाथरूम की तरफ मुड़ गई थी।

शाम निपु से मिलने गई।

उसकी जिद थी कि मैं खाना उसके साथ खाकर जाऊं। लेकिन मेरा मन था, हमेशा की तरह पापा की बगल में बैठकर खाऊं।

जब घर लौटी तो आठ बज रहे थे।

पापा अब भी उसी तरह ईजी-चेयर पर बैठे थे। नहीं, आंखें बन्द किए चुपचाप लेटे-से थे। एकदम शव की तरह। एक बार मुझे खयाल आया, अगर पापा यहां न रहें तो···और मैं जल्दी से उनके निकट चली गई, "पापा ?"

"ओह, तुम आ गई ?" पापा ने आंखें उठाईं। लेकिन मद्धिम रोशनी में कुछ भी नहीं देख पाई मैं।

"इस तरह अंधेरे में क्यों बैठे हैं ?"

"अब आंखें लाइट बर्दाश्त नहीं करतीं। अंधेरा अच्छा लगता है। चलो बेटा, खाना खाया जाये।" और वे वहीं से आवाज़ देते हैं, "विभु आ गई है, खाना लगवाओ।"

एक दिन मैं यूं ही लाइट ऑफ कर अपने कमरे में थी कि पिताजी आ गए। मेरे कमरे में अंधेरा देखकर दरवाजे तक आए, "सो गई विभा ?"

"नहीं, पापा। बस यूं ही ··।"

"नहीं बेटे, अंधेरे में नहीं रहते। जो रोशनी से निभा नहीं सकता, वही अंधेरे से समझौता कर लेता है। और समझौता एक किस्म की मृत्यु होती है।"

मैं कुछ बोली नहीं थी। चुपचाप मैंने रोशनी कर दी।

"दिस इज गुड।" और पापा हंसते हुए चले गए थे।

मैंने घूमकर देखा, पापा अब भी आंखें बंद किए चेयर पर लेटे थे। मैं धीरे-धीरे अपने कमरे तक गई। दरवाजा ठेलकर भीतर घुसी तो दम घुटने लगा। लगा, कमरे का सारा धुआं मेरी छाती में बैठ गया है। मैं खांसने लगी। घुप्प अंधेरा! और अंधरे में ही स्विच के लिए मैं हाथ मारने लगी। अंधेरे में रोशनी के लिए छटपटाना कितनी बड़ी विवशता हो सकती है, उस दिन मैंने पहली बार जाना था। मैं खांसती हुई बाहर आ गई।

मां किचिन से भागकर आई, "मैंने गोयठे का धुआं किया है। इस बार मच्छर बहुत बढ़ गए हैं।"

मैंने मां की तरफ देखा, मेरी आंखों में ढेर-सा पानी भर गया था। छाती के अंदर धुआं…एक किस्म की छटपटाहट…और अब यह छटपटाहट मैं अक्सर भोगती हूं। मैं अनुभव कर रही हूं, यह मेरी वीकनेस है कि मैं अपने को सही-सही व्यक्त नहीं कर पाती। हमेशा गलत ढंग से किसी भी बात को प्रेजेन्ट करने लगती हूं…।

सामने की सीढ़ियों पर पैरों की आहट होती है। मैं उठकर खिड़की के करीब आ जाती हूं। देखती हूं, वह गमले में लगे कैक्टस को धीरे-धीरे सहला रहा है। मैं समझ जाती हूं, आज वह खुश है। जब भी खुश रहता है, इसी तरह करता है। अब वह अपनी उंगली को दबा देता है। मैं उसकी एक उंगली पर लहू की बूंद महसूस करती हूं। वह उंगली को थोड़ा ऊपर उठाकर खिड़की के पास आ जाता है। ग्रिल की डिजाइन से हाथ भीतर कर अपनी वही उंगली मेरे माथे पर रख देता है, "हैप्पी ?"

मैं कुछ नहीं कहती। आखिर इसमें खुश होने की क्या बात है। लेकिन इतना जानती हूं, वह कोई भी काम लहू से शुरू कर लहू से खत्म करना पसंद करता है। ब्लड उसका स्वभाव बन गया है।

भीतर आते ही हमेशा की तरह ईजी-चेयर के पास ठिठक जाता है, "कितनी बार कहा कि इसे किसी के हाथ बेच दो या किसी कमरे में बंद करवा दो।"

"लेकिन यह पापा की निशानी है।"

"यट आई हेट इट। यह भी कोई बात हुई कि अपने आपको कुर्सी के हिस्से सौंपकर मुर्दे बन जाओ।" और वह लकड़ी की कुर्सी पर बैठते हुए कहता है, "गुड ! क्वाइट हार्ड।" फिर दो मिनट तक मेरी तरफ देखता है और ठहाका लगाने लगता है। और जब चुप होता है, तो केवल एक शब्द कहता है, "सॉरी।"

फिर बहुत देर तक कुछ नहीं बोलता।

मैं चुपचाप उसके बोलने की प्रतीक्षा करती रहती हूं। ऐसा लगता है, जैसे शून्य में कोई क्रास-वर्ड-पजल उछाल दिया गया है। ढेर-सारे खाली खाने। और इन खानों में हमें शब्द भरने हैं। हम इन्हीं शब्दों को जैसे सोचते रहते हैं…।

और वह कुछ देर बाद एक शब्द तलाश लेता है, "गिल्टी ?"

मैं शब्द ढूंढ़ने के बजाय उसकी तरफ देखती हूं। वह धीरे से कहता है, "यस विभु, आई फील गिल्टी···अब मैं क्या करूं ?"

मैं दीवार पर टंगी उसकी बंदूक को देखती हूं। हत्या करना उसका स्वभाव है। ब्लड उसका नेचर है। तभी शर्मा का खयाल आ जाता है। वे बिलकुल इसी तरह टूटे स्वर में बोले थे, "मैं क्या करूं विभु, मैं क्या करूं ?"

"कुछ नहीं करो। लंदन की इस गली में सड़ते रहो। अपने घर वालों को खत लिखते रहो। और वे एक-एक पड़ोसी को दिखाते फिरेंगे कि फॉरेन से आया है।"

"लेकिन मैं तुम्हें हिन्दुस्तान नहीं ले जाऊंगा।"

"क्यों नहीं ले जाओगे ?"

"मुझे नफरत है। आई हेट इण्डिया।" शर्मा पूरी शक्ति लगाकर चिल्लाए थे। मैंने देखा था, दो छोटे-छोटे वाक्यों में शक्ति खर्च कर शर्मा कंगाल लग रहे थे। उनका पूरा जिस्म पत्ते की तरह कांप रहा था और जब भी वे इस तरह कांपे हैं, मुझे बेहद घृणित प्रतीत हुए हैं। मैंने दूसरी तरफ मुंह फेर लिया, "बट आई लव इण्डिया।"

शर्मा ने दोनों हाथों से मेरे कंधों को दबाया, "सो यू वान्ट टू गो टू···।"

"यस, इन योर वर्ड्स्···द सेम हेल···।" और मैंने गुस्से में उनके हाथ झटक दिए। वे इस धक्के को बर्दाश्त नहीं कर सके। पलंग पर गिर गए।

मैंने चिल्लाकर कहा, " 'ईस्ट एण्ड' की इन गलियों से मुझे घृणा है। तुम केवल पति होने के अधिकार से मुझे यहां तक ले आए···?"

"मैं क्या करूं विभु···मैं क्या करूं ?"

"अब करने को शेष रह ही क्या गया है ! फैक्टरी के धुएं से मटमैली, बिना पुती छतें, एक-दूसरे से जुड़े मकान, धुएं से भरे कमरे···इन्हीं में से एक में तो तुमने मुझे जीवित दफन कर दिया है।"

वे धीरे से मेरे करीब आए थे, " 'ईस्ट एण्ड' की इस गली को छोड़

देंगे। लंदन के किसी भी खूबसूरत हिस्से में चले आएंगे। मगर विभु, यह भाग सस्ता है। और यहां कितने भारतीय लोग बस गए हैं!"

मैंने बिना उनकी तरफ देखे ही कहा था, "मैं जानती हूं, वे यहां किस तरह बस गए हैं। क्या 'ईस्ट एण्ड' 'वेस्ट एण्ड' के 'सोहो' की तरह नहीं है? क्या यहां वेश्याएं नहीं रहतीं? क्या इन लड़कियों को हजार दो हजार इसलिए नहीं दिए जाते कि वे बाहर से आने वालों से ब्याह कर लें और जब वे ब्रिटिश नागरिकता स्वीकार लें, तो उन्हें छोड़कर औरों के पीछे लग जाएं···बोलो, क्या यह सच नहीं है?"

"सब सच है विभु, लेकिन कितने फख्र की बात है कि हम लंदन में रहते हैं।"

"और एक दिन तुम मुझे अकेली छोड़ जाओगे, कि मैं भी उन्हीं तीन बूढ़ी औरतों की तरह कचरे के डब्बे से जूठन बीनकर खाया करूंगी और कोई आदमी झाड़ू से पीटेगा · तुमने भी तो देखा था उस दिन। याद है, तुमने कहा था, 'विभु, ये भूख कहीं पीछा नहीं छोड़ेगी··।' और मैं एकदम शर्मा के सामने आ गई थी, "एक बात कहूं?"

"क्या?"

"तुम हिन्दुस्तान से उठाकर मुझे लंदन की इस गली में ले आए। मैं खूब जानती हूं, तुमने ऐसा क्यों किया? तुम्हें पता चल गया था कि मैं आशीष से प्यार करती हूं, और तुम मुझसे बदला लेना चाहते थे। इसीलिए तुमने मुझे इन पशुओं के बीच में रख दिया है। बट आई हेट यू एण्ड दिस सराउंडिंग···।"

"चीखो मत।" शर्मा पूरी शक्ति लगाकर एक बार फिर चिल्लाए, "आई नो, यू वान्ट टू गो टू···।"

"यस, आई वान्ट टू गो टू···।" और मैंने गुस्से में अपना ब्लाउज फाड़ दिया। बाहर आ गए हिस्सों को अपने नाखूनों से नोच-नोचकर लहू-लुहान बनाती रही और चीखती रही, "भूख कहीं पीछा नहीं छोड़ती, शर्मा। कहीं नहीं, मैं मां बनना चाहती हूं और तुम मेरी उस भूख के लायक नहीं ··।" शर्मा बीच-बीच में कांपते हाथों से मुझे रोकते रहे गिड़गिड़ाते रहे, "मैं क्या करूं विभु, मैं क्या करूं···?"

कौर

रात की कजरारी आखों का काजल फैल गया। सुरजीत कौर तेज कदमों से कमरे में दाखिल हुई—जैसे कोई यात्री शीघ्रता से चल कर किसी ट्रेन में घुसा हो। अंधेरा चुप्प, रात चुप्प !

सुरजीत बुदबुदायी, "मुझे ही सब काम करने हैं। मा जरा रोशनी कर देती तो जाने कौन-सी कयामत आन पड़ती !" वह अंधकार में ही दियासलाई ढूंढने लगी। नही मिली तो मुसकान आप-से-आप उसके अधरों पर तैर गयी—उस जैसी आख वाली को जब नही मिलती तो किसी अंधी को, उसकी बेचारी नेत्रहीन मा को, कैसे मिलती ! इस बार उसका हाथ माचिस पर जा पड़ा।

उसने पहली तीली घिसी तो सिर्फ 'फिस' करके रह गयी, जली नही। उसने दूसरी तीली निकाली। घिसने ही जा रही थी कि उसे लगा, जैसे सलाई बार-बार घिसकर रोशनी देती है वैसे ही आज का इनसान भी तो सलाई-भर ही रह गया है। बार-बार जिंदगी इस उम्मीद में घिसता है कि ज्योति की रेखा उभर आये, रोशनी उतर आये। और फिर दिये से निकल कर रोशनी की मखमली चादर उस छोटे-से कमरे में इस तरह फैल गयी, जैसे कभी पहले एक छोटी-सी अंगूठी से थान-भर ढाके की मलमल छितर जाती थी।

सुरजीत ने देखा, एक कोने मे टाट से लिपटी हुई मां रद्दी की गठरी की तरह पड़ी थी। करीब ही उसकी बेटियां—प्रीत कौर, मीत कौर और किरतन कौर—एक-दूसरे से कीड़ों की तरह लिपटी पड़ी थी। किसी का सर किसी के पैरों पर, किसी के पैर किसी की छाती पर। सुरजीत से अपनी ही औलाद देखी न गयी। उसने दुपट्टे से साया आटा पुथा क

लिए, टीन का पुराना-सा डिब्बा उठाना चाहा कि वह गिर गया। डिब्बे के गिरने की आवाज से मां की आंख खुल गयी, हड़बड़ा कर बोली, "कौन ?"

"मैं सुरजीत।"

"तेरे को आज फिर देर हुई ?"

"मां—आजकल सुसरी गड्डी ही बहोत लेट आती है।"

मां इस जवाब को सुनते-सुनते तंग आ गयी थी, झुंझला कर बोली, "ये गड्डी अक्सर ही पीछे क्यों आने लगी है ?"

सुरजीत के गले में उत्तर फंस गया, जैसे कोई कांटा हो। वह बार-बार निगलने का प्रयास करने लगी। अब वह कैसे कहे कि गड्डी पीछे नहीं आती, बल्कि अपने को प्रगतिशील कहने वाला इन्सान ही इन दिनों बहुत पीछे लौट गया है। फिर उसने बातों के खिलौनों से बहलाना चाहा, "मां, तुमी चैन से बैठो। मैं अभी फुल्के सेंकती हूं।"

और जब वह फुल्के सेंकने लगी तो उसे ख्याल आया, जब उसकी मां की आंखें ठीक थीं और वह चूल्हे की करीब बैठकर फुल्के सेंकती थी, उस वक्त अक्सर सोचा करती थी कि जब वह सयानी हो जायगी तो खुद फुल्के सेंकेगी। मां को वह कोई तकलीफ नहीं होने देगी। चौके से उठा-कर कहेगी : "तेरे को सेंकने की ज़रूरत नहीं, क्या मेरे को सेंकने नहीं आते।"

सोचने का क्रम आगे बढ़ा, तो, उसे लगा : वह रोटी लिए 'उन सामने बैठी है। अजाने ही उसके गालों पर सुर्खी फैल गयी—जैसे कि ने गुलाल मल दिया हो। कोई करीब बैठा, फुल्कों की मांग कर रहा उसे गलियों में बजता एक रिकार्ड सुनायी पड़ने लगा—

"मोती चुगने गयी रे हंसी, मानसरोवर तीर।
पंख-पंख पर राजहंस ने, लिख दी प्रीत की पीर।।"

उसने पलट कर देखा, वहां कोई भी तो नहीं सिर्फ उसकी थीं। किसी ने राजहंस का एक-एक पंख जबरन उखाड़ दिया, गालों के गुलाल को जान-बूझकर रगड़कर मिटा दिया।

उसे ध्यान आया कि वह अक्सर ही सोचा करती थी : उ

होंगे; वह उन्हें सेंक-सेंक कर रेशम की तरह मुलायम फुल्के खिलायेगी। तभी उसकी आंखों में आंसू तिर आये, "किस्मत दी मारियां ने अज वड्डे-वेल से (सुबह से) कुछ खद्दी-पी नई""'और वह जल्दी-जल्दी फुल्के सेंकने लगी।

पहले जब मुल्क आज़ाद नहीं हुआ था, सबकी आंखों में आम की तरह मीठे-मीठे, रस-भरे सपने थे। लेकिन जब देश आज़ाद हुआ तो उस की माताजी की आंख पहले जरा खराब हुई, फिर एकदम ही रोशनी चली गयी। दंगे में उसका शोहर मारा गया तो सपनों के आम में कीड़े लग गए और फिर वह मां सहित शरणार्थी-जत्थे के साथ भारत भेज दी गयी'''और वह फिर सुरजीत कौर बन गयी। और उसे याद आया, आज जब उसने गाड़ी में एक बाबू का दिया हुआ गीत गाया—

"और बात है, मेरे ख्यालातों के शिशु को
बातों के खिलौने से बहला दो
लेकिन तसव्वुर में, हमी ने, गंगा की बाहों
में झूमते चनाब देखे थे।
यह और बात है, कुर्बानियों की दुलहन की
सिंदूर चुरा के, आज दूल्हे हो,
लेकिन यह भी तो सच है, हम ने भी कभी
आज़ादी के ख्वाब देखे थे।"

तो कोई नेता-सा लगने वाला आदमी एकदम बिगड़ पड़ा था। वह चुप हो गयी थी, जैसे चुप्पी की सगी हो। लेकिन उसे अजीब लगा—आज़ादी से पहले यही नेता लोग कितनी मिन्नतें करते थे, लाख खुशामदें और हज़ार तसल्लियां कि आज़ादी मिलते ही यह हो जायगा, वह हो जायगा। और वह मन मसोस कर गाने लगी थी—

"तेरे बाज़ू न कोई सहारा,
सोना लुटिया पंजाब पियारा।
रावलपिंडी, लाहौर विच मारे,
कैंया भेड़ा दें वीर पियारे।

रस्ते जा दियां न, गोते खादियां,
छुरे मारे ।
बच्चे मां-मां दे गोदियां खो-खोके
मारे ।"

एक यात्री बिगड़ गया, "ओए, बिहार दे विच देख ।" और फिर हंसकर बोला, "यह पंजाब का रोनाधोना नहीं चलेगा ।" सुरजीत उसे कैसे समझाये कि क्या बिहार, क्या पंजाब, क्या बंगाल, सबका रोना तो एक ही है । क्योंकि सबका रोना, मन का है । रोना पेट का है। लेकिन वह मन को और पेट को दबाकर गा उठी थी—

"ऐ मौत, तूने हमको दरि-दरि रुला के मारा,
घर से तो किया बे-घर, बन में रुला के मारा—
क्या दोष दूं किसी कू, अपने ही करम खोटे—
घर के चिराग बनकर, घर कू जला के मारा ।"

लोग वाह-वाह करने लगे थे। फिर वह यकायक चौंक गयी, चपाती जल गयी थी । फुल्के सेंककर एक टीन के टूटे-से बरतन में नमक के साथ रोटियां रख मां के सामने बढ़ा कर उसने कहा, "तुसी खा लो न ।"

"तयार हो गयीं ?"

"हैं जी," और उसने मां का हाथ चपातियों पर रख दिया । बच्चियां सो रही थीं । उसने एक-एक को झकझोर कर उठाया, "ओए, कुड़ी, लंगर वास्ते चल !"

सबकी सब उठ गयीं । सिर्फ किरतन नहीं उठी । सुरजीत ने प्यार से पुचकारा, "मेरी लाडो, अब उठ भी जा । चल, चल न, चपातियां तयार हैं ।" और जब दो-तीन आवाज़ों में किरतन उठी तो उसे यकीन ही न हुआ कि उसे भोजन के लिए उठाया जा रहा है । क्योंकि नानी दिन से ही कह रही थी कि तुम्हारी मां आटा लाने गयी है·· और अपलक इंतजार भरी आंखों से वह मां, नहीं-नहीं, आटे का इंतजार करते-करते सो गयी थी । लेकिन जब उसने नानी के सामने फुल्के देखे तो उसे अजीब-सी खुशी हुई और वह सुरजीत से लिपट गयी ।

सब ही सब खाने बैठीं—प्रीत कौर, नीत कौर और किरतन कौर ।

किरतन के मुह मे सुरजीत खुद निवाले दे रही थी, सबसे छोटी जो थी वह। खाना खाती हुई प्रीत कौर ने पूछा, "मां जी, आज बहोत देर से आयी तू?"

"हा, गड्डी ही लेट थी"—सुरजीत कौर ने रटी-रटायी बात कह दी।

सभी कोई न कोई सवाल कर रही थी। चुप थी तो केवल किरतन। सुरजीत ने भोजन का कौर उसके मुह मे देते हुए पूछा, "क्यों लाडो, तेरे को सवाल नहीं पूछने?"

सुरजीत कौर का हाथ रोकते हुए किरतन कौर ने कहा, "माताजी, पूछने तो हैं। तू मेरे को सिर्फ यह बता दे कि तू हमारे लिए रोटियां कैसे लाती है? बडी होकर मैं भी तेरी ही तरह रोटियां लाया करूंगी।"

सुरजीत कौर का हाथ बरफ की तरह जम गया। जवान, जैसे कोई खत, जिसमें सब-कुछ लिखा तो है, लेकिन जिसे किसी ने मजबूरी के गोंद से, लिफाफे के भीतर डालकर चिपका दिया हो। अब वह अपनी लाडो से, किरतन कौर से कैसे कहे कि, वह पहले किलास मे सोई है, तीसरे किलास मे सोई है, गारड के डिब्बे मे सोई है, स्टेशन मास्टर के कमरे मे सोई है और कुलियो के साथ पलेटफारम पर···वह कैसे समझाए कि पहले तो सिर्फ प्रीत कौर थी। जब वह प्रीत कौर के लिए रोटियां इकट्ठी करने लगी तो नीत कौर आ गयी। और जब वह प्रीत कौर और नीत कौर के लिए लगर का इतजाम करने लगी तो किरतन कौर आ गयी। उसका जी चाहा कि वह चीख-चीखकर कहे कि आदमी बहोत मेहरबान, बहोत रहमदिल हो गया है। उनके मुह मे रोटियो का कौर देने के साथ-साथ हर बार खेलने के लिए उन्हे एक 'कौर' भी दे देता है।

और किरतन कौर है कि पूछे जा रही है, "माताजी, मेरे को बता दे न, तू रोटियां कैसे लाती है? बड़ी होकर मैं भी तेरी ही तरह रोटियां लाया करूंगी···।"

हुक

आलिया को लगा, जैसे शव को बक्स में डालकर लोग एक-एक पेंच सतर्कता से कसते हैं, वह भी वैसे ही दरवाजा बन्द कर रहा है। उसने पहले, केवल पल्ले जोड़ने की आवाज सुनी। वह घूमी।

उसने देखा, वह झुककर नीचे की सिटकिनी लगा रहा है। फिर उसने ऊपर की सिटकिनी लगा दी, अन्त में लकड़ी लगा देने के पश्चात् जैसे वह आश्वस्त हो गया। इतना सब कर, वह बाथरूम में घुस गया। मगर तुरंत ही भयभीत-सा बाहर आ गया। उसने एक बार उसे देखा और सीधा मेज के निकट गया। दराज से कुछ उसे लेना था, शायद।

काफी देर तक, चीजें उलट-पलट करता रहा। फिर कुछ ख्याल आया, दराज यूं ही खुली छोड़कर दूसरे कमरे में चला गया। वापस आया, तो उसके हाथ में एक बड़ा-सा ताला था। उसने, उसी दरवाजे में भीतर से ताला लगा दिया। चाबी को एक बार उसने उछाला। फिर मुट्ठी में कसकर, वह आप ही आप मुसकराया। चाबी को पैंट की जेब में ठूंसकर, वह दुबारा बाथरूम में घुस गया।

आलिया ने सोचा, शव को इस प्रकार बक्स में बन्द करना मूर्खता के अतिरिक्त और क्या है ··लाश यदि बन्द न भी की जाए, तो क्या वह उठकर भाग जाएगी ?···और उसने, सामने के आईने में अपना अक्स देखा··· फिर दरवाजे को···और वह बहुत धीरे से मुसकरायी।

बाथरूम से लगातार पानी गिरने का स्वर आ रहा था। उसने सोचा, वह नहा रहा है। अभी उसे देर लगेगी [illegible] चाबी अपने साथ क्यों ले गया···क्यों ? क्या इतना छोटा-सा [illegible]

विश्वास नहीं था ?"

वह चुप थी।

डैडी एकदम आगे आ गए थे—"यू बिच···" और मुंह से एक बार भक् से शराब की गंध उठी। फिर एक मुक्का उसकी नाक और होंठ के बीच। उसने जीभ से अनुभव किया, होंठ से खून बहने लगा था।

वह कुछ नहीं बोली थी।

चुपचाप सूटकेस में अपने कपड़े रखने लगी थी।

तभी उसका भाई आ गया था। डैडी ने कहा, "सुनते हो चार्ल्स, यह हरामजादी घर छोड़कर जा रही है···"

"जा रही है !"··· वह एकदम चौंक गया था, "कहां ?"

वह फिर भी चुप रही।

वह एकदम करीब आ गया, "कहां जा रही हो ?"

वह चुपचाप उसकी तरफ पीठ किए, कपड़े पैक करती रही।

यकायक उसका भाई चिल्लाया, "कुतिया···बतलाती क्यों नहीं ?" और खींचकर उसे कमरे के बीच में ले आया। लगातार पीटने लगा। वह गिर गई। उसने कसकर एक लात उसकी कमर पर दी। वह एकदम जोर से रो पड़ी थी।

मम्मी ने कहा था, "चार्ल्स, इसने सिविल मैरिज कर ली है।"

—"किसके साथ ?" वह गुर्राया था।

—"वही पी०···"

—"पी० ? वह रास्कल···खूनी···आवारा···वह इसे ले जाकर चकला चलायेगा···आई विल किल हिम···आई विल शूट"···और तभी चौखट पर एक भारी आवाज आकर खड़ी हो गई थी, "मैं टैक्सी में बहुत देर से इंतजार कर रहा था, चलो आलिया "

उसने देखा था, ठोस-मजबूत स्तम्भ की तरह पी० खड़ा था। वह उठी थी। सूटकेस उठाकर, चुपचाप चौखट के बाहर आ गई थी। किसी में भी, उसे रोकने की हिम्मत नहीं पैदा हुई···न मम्मी, न डैडी, न भाई !

खट् से बाथरूम का दरवाजा खुला।

वह नहाकर बाहर आ गया। उसने गीला तौलिया वहीं फेंक—

टांग दिया। फिर उसकी तरफ देखकर बोला, "अरे, तुम अभी तक खड़ी हो···जाओ, जाकर नहा लो।"

वह चुपचाप जाने लगी। जब वह एकदम दरवाजे के पास आ गई, तब वह तेजी से उसके करीब आ गया "···सुनो, एक-एक चीज घिसकर साफ करना···" वह जोर से हंसा।

बिना कोई उत्तर दिए, वह भीतर घुस गई।

फिर उसने दरवाजे को भीतर से बोल्ट कर लिया।

शावर के नीचे एक पटिया पड़ी थी। गीली-गीली। वैसे शावर बन्द था, मगर एक-दो बूंद पानी जब-तब चू रहा था। बिना कपड़े उतारे, वह उसी पटिया पर बैठ गई, पैर मोड़कर···

···उस समय, वह मुश्किल से दस साल की रही होगी। एक दिन स्कूल से लौट रही थी, कि पानी हलके-हलके चूने लगा था। घर के रास्ते पर ही डेविड अंकल का घर पड़ता था। वह जैसे ही उनके गेट के सामने से गुजर रही थी, अंकल ने आवाज दी, "आलिया बेटी, भागकर भीतर आ जा···"

वह भीतर चली गई थी।

अंकल के घर वह मम्मी-डैडी के साथ कई बार आई थी। जब भी वे लोग आते, अंकल कहते, "भई, मैं तो ईश्वर का सेवक ठहरा। इसलिए मैंने शादी नहीं की। या तो पत्नी की सेवा करो, या फिर ईश्वर की। दोनों काम एक साथ हरगिज नहीं हो सकते···अब तुम ही उठो आलिया की मम्मी, और हम सब के लिए कॉफी बनाओ।"

मम्मी उठकर भीतर किचिन में चली जातीं। डैडी और अंकल बातें करते। और वह दीवार पर लगे धार्मिक चित्रों को देखा करती। विशेष कर, उसे वह चित्र बहुत ही पसन्द था, जिसमें एक औरत अपने बालों से जीसस के पैर पोंछ रही थी···इस पेंटिंग को देखकर, उसके मन में कितने ही विचार उठे थे और हर बार उसने अपने बालों को छुआ था। मगर वे बहुत छोटे थे···और उसे इस बात का बहुत दुःख था।

जब वह भीतर गई थी, तो हमेशा की तरह उसकी नजर सबसे पहले उसी पेंटिंग पर गई···और पेंटिंग का ख्याल आते ही, उसने कंधे पर फैले

अपने बालों को छुआ…लम्बे, घने, छितराए हुए बाल। ठीक उसी औरत की तरह…

तभी दरवाजे पर दस्तक पड़ी, और वह बाहर से चिल्लाया—"सुनो, वहीं पाउडर का डिब्बा पड़ा है। बदन पर अच्छी तरह से छिड़क लेना… मुझे खुशबू अच्छी लगती है।"

वह शायद दरवाजे के निकट से चला गया, क्योंकि अब वह किसी तरह की आज्ञा नहीं दे रहा था।

आलिया नहाने लगी।

जब वह बाथरूम से निकली, तो उसका सारा शरीर महक-महक कर रहा था। वह एक किनारे खड़ी होकर तौलिए से बाल झटकने लगी…

उसे आश्चर्य हो रहा था, यह लड़की इस कदर निडर क्यों है।

उसने जानबूझकर, उसके भीतर भय पैदा करने के लिए पूछा, "तुम्हें यहाँ अच्छा नहीं लग रहा है?"

आलिया ने गर्दन को थोड़ा-सा घुमाकर उसे देखा। फिर पहले की तरह तौलिए से बाल झटकने लगी, चुपचाप।

आलिया को पाकर, वह वास्तव में बहुत प्रसन्न था।

एकदम कसा हुआ शरीर।

मगर उसकी खामोशी से, अब वह भीतर-भीतर कुछ डरने लगा था। उसने एक बार फिर साहस किया, "सचमुच तुम्हें डर नहीं लग रहा है?"

—"डर तो तुम रहे हो।" आलिया ने पहला वाक्य कहा।

—"मैं?" वह बुरी तरह सिहर गया।

—"हूँ! तुम्हें डर है कि कहीं मैं भाग न जाऊँ…दरवाजे में भीतर से ताले की क्या जरूरत थी?…इतना छोटा-सा विश्वास भी जब तुम्हें पास नहीं है, तो मुझे लाने की क्या आवश्यकता थी?"

उसने पैंट की जेब में हाथ डाला।

चाबी निकालकर थोड़ी देर वह अंगुलियों के बीच दबाता रहा। फिर कुछ सोचकर, उसने जेब में वापस डाल लिया।

आलिया धीरे से मुस्कराई, "मैं जानती थी, तुम ने [illegible]

है। और जहां विश्वास नहीं होता है, वहां शंका होती है। फिर व्यक्ति केवल शंका को सोचता है। उसी से पुल बनाता है। और जब इस पुल से गुजर कर पार जाता है, वहां भी उसे शंका ही मिलती है…किसी का विश्वास नहीं।"

वह एकटक उसे देखता रहा।

फिर परखने के लिए कि यह लड़की उसकी हर बात मानती है या नहीं, उसने कहा, "मुझे एक कप चाय चाहिए।"

—"किचिन ?"

—"उधर।" उसने उंगुली से इशारा किया।

—"पत्ती, दूध…?"

—"सब वहीं।"

वह भीतर चली गई।

उसने हीटर का प्लग लगाया। केतली चढ़ा दी, और इंतजार करने लगी…

उसे पी० का इंतजार रहता था। पी० याने डॉ० वेनस का एक मामूली ड्राइवर, जिसका काम था हर सण्डे उसे, ममी और डैडी को उनके यहां पहुंचाना और लाना…पी० कुछ भी हो सकता था, परीवक्श …पीटर…या प्रभात…उसे जानने की आवश्यकता भी नहीं थी, उसे तो सिर्फ गाड़ी का इंतज़ार रहता था।

हर सण्डे डाक्टर वेनस के यहां वाइन-पार्टी होती थी। मुर्गी, अण्डे, कबाब…और हर किसी को सर्व करती हुई वह…

डाक्टर वेनस खुद मम्मी और डैडी को सर्व करते…आधी पार्टी तक ही, वे दोनों पीकर औंधे पड़ जाते… फिर हर कोई उसी के हाथ से पीना चाहता। बड़ी रात तक उसके लिए छीना-झपटी होती…और जब वह जाने को होती, डाक्टर वेनस मुर्दा पड़े उसके डैडी की जेब में नोटों का एक बण्डल ठूंस देते। फिर पी० उन दोनों को लादकर, पीछे की सीट पर डाल देता। वह आगे बैठ जाती।

पानी खौलने लगा। उसने पॉट में पत्ती छोड़ दी। फिर पानी…

कितने सण्डे यूं ही निकल गये अर्थात् कितने महीने।

अब वह बहुत कम बोलने लगी थी। उस छीना-झपटी में उसने बोलना ही छोड़ दिया था…बोलने से क्या लाभ ? मात्र शब्दों का अपव्यय !

एक दिन पी० ने पूछा था, "तुम्हारे बाप की जेब में पड़े नोटों का क्या होता है ?"

—"हफ्ते-भर का राशन और शराब।" इतना सीधा उत्तर पाकर पी० ने फिर कुछ नहीं पूछा।

उसे चाय का ख्याल आया।

प्याली में डालकर उसके सामने ले गयी। वह धीरे-धीरे सिप करने लगा…

पी० गाडी हमेशा धीरे-धीरे चलाया करता था। एक रात लौटते वक्त उसने पूछा, "तुम्हारा भाई क्या करता है ?"

—"बहन की कमाई खाता है और जुआ खेलता है।" एकदम सपाट उत्तर।

पी० भौंचक रह गया। उसने जोर से एक्सलेटर दबाया…50 · 60 70…

—"लो, प्याली लो।" उसने कहा।

झूठी प्याली लेकर वह पुन. किचिन में आ गयी। प्याली धोते-धोते उसके सामने पी० का चेहरा आ गया, "इस तरह रोज-रोज खाया जाना अच्छा लगता है ?"

—"मुझे किसी ने नहीं खाया है।" वह जोर से चिल्लायी थी।

—"चिल्लाओ मत।" वह चीखा था।

—"हां, हां, खूब चिल्लाऊंगी…जानती हूं, तुम भी एक आवारा और बदचलन आदमी हो…तुम अपने मालिक और मालिक के दोस्तों को लडकियां पहुचाते हो…मैं अकेली हूं, तुक मुझे खा जाओ…मेरा बाप पीछे की सीट पर बेहोश पड़ा है, जागेगा भी तो कुछ नहीं बोलेगा… उसकी जेब में नोट भरे हैं…" वह हांफने लगी थी, "वे सब क्या खाएंगे मुझे…पीकर आधे मरे हुए लोग…आपस में ही लड़ते-झगड़ते साले कुत्ते कोई हाथ पकडता है तो कोई, बस।…वे क्या खाएंगे, तुम में हिम्मत

है, तो गाड़ी रोको और चबा जाओ मुझे···।"

मोड़ पर गुस्से से पी० ने स्टीरिंग घुमायी थी।

प्याली धोकर वह कमरे में आ गयी।

उसने कहा, "सुनो, इस साड़ी में बहुत सुन्दर लग रही हो।"

वह चुपचाप खड़ी रही।···

उस सण्डे भी, जब वह तैयार हुई थी, तो डैडी ने हमेशा की तरह रिमार्क दिया था, "बेबी, टुडे यू विल किल सम वन···" और जोर का ठहाका। गाड़ी आ गई।

कार में बैठते ही उसने देखा ड्राइवर कोई दूसरा था। रास्ते भर वह ड्राइवर से पी० के विषय में पूछना चाहकर भी पूछ नहीं सकी थी। डैडी-ममी होश में···और जब रात में लौटते वक्त वे दोनों पीछे की सीट पर औंधे पड़े थे, उसने अपना सवाल उसके सामने रखा था।

ड्राइवर ने कहा था, "मेम साब, उसने तो डाक्टर साहब की नौकरी छोड़ दी। कहता था, ये 'माल' ढोने का काम अपन से नहीं होगा···ये नीच काम है। सच, उस्ताद का दिमाग फिरेला···अपन कूं क्या, जेब में रुपया तो आता है, फिर साला माल ढोओ या कूड़ा···" और उसकी तरफ देखकर वह भद्दे ढंग से हंसा।

—"सुनो, तुमने रुपयों का क्या किया ?"

वह उसे देखती रही, चुपचाप।

—"बताओ न, क्या किया ?"

—"कुछ भी।"

वह कुछ सोचता रहा। फिर उसने कहा, "तुम यहां मेरे पास रहोगी न ?"

—"तुमने एक महीने के लिए रुपये दिए हैं, फिर अविश्वास का कारण ?"

उसने कुछ नहीं कहा।

वह सोचने लगी, एक दिन उसके प्रस्ताव को सुनकर पी० एकदम चौंक गया था, "तुम मुझसे शादी करोगी ?"

—"क्यों, तुम मर्द नहीं हो ?"

—"लेकिन···मैं तो एक साधारण ड्राइवर···लड़कियां पहुंचाने वाला बदचलन और···"

—"मुझे तुम पर विश्वास है।"

—"मुझ पर !"

—"हां तुम पर, तभी तो तुमसे एक पत्नी का अधिकार मांगने आई हूं···वरना डॉक्टर वेनस के पास जाकर उससे रुपये मांगती और इस शरीर को नुचवाती।"

"और कहीं एक सूदखोर की तरह मैंने तुम्हें खाना शुरू कर दिया तो ?"

—"तुम ऐसा नहीं कर सकते।"

—"क्यों नहीं कर सकता···मैं तुम्हें पत्नी बनाकर तुमसे ही बिजनेस शुरू कर सकता हूं।"

—"तुम ये भी नहीं कर सकते।"

—"इतना सारा विश्वास !"

—"औरत के पास विश्वास के अतिरिक्त और होता भी क्या है। कोई भी मर्द जब चाहे उसे छोड़ सकता है···कानून केवल उसे खर्च दिलवाता है, मर्द का मन नहीं लौटाकर दे सकता···और ये विश्वास ही है, जो त्याग दिए जाने के बाद भी औरत से जीवन-भर प्रतीक्षा करवाता है।"

पी॰ कुछ सोचने लगा था। फिर उसने कहा, "मैं एक शर्त पर शादी कर सकता हूं।"

—"क्या ?"

और पी॰ की शर्त सुनकर वह हंस दी थी।

—"सुनो, तुम हंस रही हो, अपने-आप क्या बात है ?"

वह एकदम शान्त हो गयी।

—"इधर आओ।"

वह बिस्तर के करीब आ गयी।

"ऐसे नहीं, मैं जैसे चाहूं—तुम्हें याद है, तुमने कहा था कि एक माह तक मैं जिस प्रकार चाहूं तुम्हारा उपयोग कर सकता हूं ?"

—"याद है।" उसने धीरे से कहा और वह लाइट ऑफ करने के

लिए आगे बढ़ी।

—"नहीं, बत्ती मत बुझाओ···मैं तुम्हें रोशनी में देखना चाहता हूं।" उसने कहा।

वह स्विच-बोर्ड से पीछे हट गयी।

पलंग पर पड़ी चादर लपेटकर उसने कपड़े उतारने चाहे।

—"नहीं, चादर भी नहीं···मैं एकदम ऐसे देखना चाहता हूं।"

चादर पलंग पर रखकर, वह दोनों हाथों को पीठ की तरफ कर, ब्लाउज के हुक खोलने लगी।

एक खुला।

फिर दूसरा।

तीसरा हुक फंस गया···

वह कोशिश करती रही। तभी वह उठकर उसके पास आ गया, "लाओ, मैं खोल देता हूं।"

—"रहने दो, मैं तो खोल ही रही हूं। हां, समय क्या हुआ है ?"

—"क्यों ? समय से तुम्हें क्या···अभी तो एक महीना मेरे पास रहना है !" उसने कहा।

तभी दरवाजे पर दस्तक पड़ी।

वह दरवाजे की तरफ देखने लगा। आलिया ने कहा, "दरवाजा खोल दो।"

वह स्थिर खड़ा रहा।

—"लाओ, चाबी मुझे दो।" वह बोली।

वह शान्त रहा।

वह चीखी, "चाबी लाओ।"

वह इतना जोर से चिल्लायी थी, कि उसने जेब से चाबी निकाल उसकी हथेली पर रख दी।

आलिया आगे बढ़ गयी।

उसने ताला खोला। ऊपर-नीचे की सिटकिनियां खोलीं। लकड़ी हटायी। और दरवाजा खुला तो सामने गुस्से से कांपता हुआ पी० खड़ा था।

वह हमेशा की तरह धीरे से मुसकरायी, "इस तरह पागल नहीं होते··· पी०, लो, ब्लाउज की हुक लगा दो।" और उसने पी० की तरफ अपनी पीठ कर दी। जब वह लगा चुका तो उसकी जेब से नोटों के कई गड्डर निकालकर सामने फेंकती हुई बोली, "डाक्टर वेनस, जिसको हुक लगाने का अधिकार होता है, वही उसे खोल भी सकता है···तुम्हारा हिसाब चुकता हुआ, शायद अधिक ही रुपये हों···बाई···"

और वह पी० को लेकर नीचे धड़ाधड़ उतर गयी।···

डाक्टर वेनस ने रुपये उठाये। उन रुपयों के साथ एक पत्र भी आ गया था।···

पी०,

एक सिपाही के द्वारा यह पत्र भिजवा रही हूं, शायद तुम्हें मिल जाये···

तुम चोरी के अपराध में पकड़े गए। तुम्हें सजा सुना दी गयी है जुर्माना या जेल।

याद है शादी से पहले तुमने एक शर्त रखी थी, कि अगर कभी तुम पकड़े गए, तो अपने-आपको बेचकर भी मुझे छुड़ाना होगा · मैं तुम्हारा जुर्माना भर रही हूं—डाक्टर वेनस के हाथों अपने को बेच कर। जानती हूं, तुम आज ही छूट जाओगे···और मैं एक महीने के लिए डाक्टर वेनस के चेम्बर में बन्द हो जाऊंगी · मगर मैं जानती हूं, लाख बुरे से बुरा मर्द, बदचलन औरत को पत्नी बना लेने के बाद उसका खून कर सकता है, लेकिन उसे किसी परिचित-अपरिचित की बांहों में नहीं देख सकता···मैंने तो अपना वायदा पूरा किया, परन्तु मुझे विश्वास है, तुम बड़ी से बड़ी चोरी करोगे, डाका डालोगे, मेरा खून कर दोगे···मगर मेरी इज्जत डाक्टर वेनस को नहीं लेने दोगे। मेरे पास इतना सारा विश्वास अब भी शेष है पी०···और फिर, औरत के पास विश्वास के सिवा होता ही क्या है।

तुम्हारी
आलिया

तभी चारों तरफ से पुलिस की सीटियां सुनायी पड़ने लगीं। डा०

लिए आगे बढ़ी।

—"नहीं, बत्ती मत बुझाओ···मैं तुम्हें रोशनी में देखना चाहता हूं।" उसने कहा।

वह स्विच-बोर्ड से पीछे हट गयी।

पलंग पर पड़ी चादर लपेटकर उसने कपड़े उतारने चाहे।

—"नहीं, चादर भी नहीं···मैं एकदम ऐसे देखना चाहता हूं।"

चादर पलंग पर रखकर, वह दोनों हाथों को पीठ की तरफ कर, ब्लाउज के हुक खोलने लगी।

एक खुला।

फिर दूसरा।

तीसरा हुक फंस गया···

वह कोशिश करती रही। तभी वह उठकर उसके पास आ गया, "लाओ, मैं खोल देता हूं।"

—"रहने दो, मैं तो खोल ही रही हूं। हां, समय क्या हुआ है?"

—"क्यों? समय से तुम्हें क्या···अभी तो एक महीना मेरे पास रहना है!" उसने कहा।

तभी दरवाजे पर दस्तक पड़ी।

वह दरवाजे की तरफ देखने लगा। आलिया ने कहा, "दरवाजा खोल दो।"

वह स्थिर खड़ा रहा।

—"लाओ, चाबी मुझे दो।" वह बोली।

वह शान्त रहा।

वह चीखी, "चाबी लाओ।"

वह इतना जोर से चिल्लायी थी, कि उसने जेब से चाबी निकाल उसकी हथेली पर रख दी।

आलिया आगे बढ़ गयी।

उसने ताला खोला। ऊपर-नीचे की सिटकिनियां खोलीं। लकड़ी हटायी। और दरवाजा खुला तो सामने गुस्से से कांपता हुआ पी० खड़ा था।

स्थिर-अस्थिर

पाखी स्थिर है। एकदम चुप।

लेकिन स्थिर पानी में जैसे पत्थर की परछाइयां भी कांपती हैं, पाखी के भीतर भी बहुत कुछ अस्थिर है।

वह खाट पर चुपचाप बैठी है। पांव भी नहीं हिलाती। पहले वह जब भी पैर लटकाकर बैठती थी, हिलाया करती थी। वह क्यों ऐसा करती थी, खुद भी नहीं जानती। मगर पिताजी जब भी देख लेते, कहते—पाखी पैर स्थिर रखो।

वह महसूस करती है, खाट बहुत दिनों से कसी नहीं गई है। कसने से इसमें तनी हुई स्थिरता आ जाएगी। परन्तु फिर वही लिजलिजापन! आखिर बार-बार प्रयास कर लाई गई स्थिरता से क्या लाभ?

. वह मृतक-कोण को देखती है। इसी कोने में पिताजी का शव रखा था। उसका मन हुआ था, कि वह खूब जोर से पैर हिलाने लगे और तब तक हिलाती रहे, जब तक पिताजी न कहें—पाखी पैर स्थिर रखो।

पिताजी की मृत्यु से पूरा घर जैसे हिल गया था। अस्थिर। मां की चीख, धीरा का रोना, उसका सिसकना···फिर घर जैसे धीरे-धीरे बीमार पड़ गया। फिर मर गया। सब कुछ स्थिर हो गया। पहले से भी कहीं ज्यादा।

वह जब भी घर आई है, अपने को यात्री समझती रही है। ऐसा क्यों समझती है, यह स्वयं नहीं समझ पाती। यात्री—यानी अस्थिर। ठहरना, फिर चल देना। मगर इस घर में उसकी एक चीज स्थिर है। छोटी आलमारी। उसके जाने के बाद भी, न किसी ने उसे खोला, न हटाया।

गर्दन मोड़कर वह धीरा की मेज देखती है। इस बार खिड़की के

स मेज नहीं । पीठ फेरती है । मेज वहां रखी है, जहां पहले मैले कपड़े ा वक्स रखा था । इस घर में, जब भी वह आई है, उसने देखा कि सारी चीजें इधर-उधर हुई हैं, स्थिर है तो सिर्फ उसकी आलमारी ।

वह देखती है, धीरा की किताबें वेतरतीव ढंग से पड़ी हैं । मेज पर विछाया गया कागज भी फट गया है । किताबों पर वह कपड़ा पड़ा है जिस पर कोई अधूरा नमूना काढ़कर छोड़ दिया गया है। वगल में कु शीशियां और टैब्लेट्स फेंके-से हैं। वह उठकर मेज के निकट आती है… यूटोमीनाल, हेपाटोग्लोविन, स्टिप्टोवियोन, वेरालगेन…एक कागज में लगे हुए टैवलेट्स उठाती है—इनाविड ई । वह देखती है, सिर्फ दो टैवलेट्स खाए गए हैं । और जहां से वे निकाले गए हैं, उस कागज के नीचे दो महीने पहले की तारीख डली हुई है। वह समझ जाती है, धीरा ने इसे खाना वन्द कर दिया है । उसे क्रोध आता है । धीरा को पीरियड ट्रवल झेलने में सुख मिलता है तो वह क्या करे !

वह फिर आकर वैठ जाती है । मां की खाट पर सिर्फ एक गुदड़ी विछी है । तकिये पर शायद हमेशा की तरह खोल नहीं है, क्योंकि उस पर एक फटी-पुरानी साड़ी डली है । खिड़की पर भी दो-चार शीशियां पड़ी हैं । वह उठाकर देखती है – एन्टीहिस्ट । दमे के लिए । उसके कानों में मां की खांसी सुनाई पड़ने लगती है। वह शीशी रख देती है । नॉट फॉ सेल। सैम्पुल फाइल । वह जानती है, ये सारी दवाइयां मिसेज दत्त दिय करती हैं ।

पाखी स्थिर है ।

तभी मां आती हैं । देखती हैं । मगर कुछ कहती नहीं । चुपचाप प वाले कमरे में चली जाती हैं । पिताजी जव थे, इसी कमरे में सुवह किया करते थे । घण्टों । मां से वरावर इस घण्टी को लेकर झड़ जाया करती थी । मां का कहना था, कि पूजा के अतिरिक्त भी इस में और कुछ है । मगर और कुछ में जैसे पिताजी को कोई रुचि नह पूजा करते । घण्टों । उनकी मृत्यु के वाद यही रोग अव मां को ल है । धीरा ने ठीक ही लिखा था, मां वहुत वदल गई हैं । अव मां, नहीं रहीं । न घर में रुचि, न मुझ में । तुम्हारी चिट्ठी आती है

हूं, तो कहती हैं तकिये के नीचे रख दे। मगर मैं जानती हूं दीदी, वे तुम्हारी चिट्ठी नहीं पढ़ती।

पाखी के भीतर परछाईं की तरह कुछ हिल जाता है। वह धीरा के लौटने का इन्तजार करती है। धीरा आती है। धीरे-धीरे। थकी-थकी। मेज पर किताबें फेंककर पूछती है—कब आईं?

—थोड़ी देर पहले।

—मा से भेंट हुई?

—हुई, न भी हुई।

—ओह!—धीरा गहरी सांस लेकर खाट पर बैठ जाती है। चुप-चाप। स्थिर।

पाखी के भीतर फिर कुछ हिलता है। यह धीरा कितनी स्थिर हो गई है। पहले कॉलेज से लौटती तो शोर मचाती हुई आती थी। चप्पल घिसकर चलती थी। उसने कितनी बार मना किया था—धीरा, पैर उठाकर चला कर। मगर आज पता भी नहीं चला कि धीरा आई है!

—पढ़ाई कैसी है? उसने पूछा।

—बस, ठीक।

फिर दोनों चुप हो जाती हैं। पाखी पूजा-घर की तरफ देखती है।

—मा अभी नहीं निकलेंगी।—धीरा कहती है।

—क्यों?

—जहां बैठकर पिताजी पूजा किया करते थे, मा वहीं बैठी-बैठी रोती हैं। घण्टों। फिर वहीं सो जाती हैं। यह खाट बस यूं ही लगी है। मां इस पर नहीं सोतीं।

पाखी कुछ नहीं कहती। पूजा-घर से आंखें हटाकर मा की खाली चारपाई पर डाल देती है। धीरा पूछती है—जीजाजी भी आए…

—नहीं। अकेली आई हूं।

उसे डर लगता है, धीरा फिर कोई प्रश्न न करे। मगर धीरा चुप हो जाती है। उठकर बाथरूम भीतर से बोल्ट कर लेती है।

पाखी को कुछ हलका-हलका लगता है।

वह उठकर किचिन में चली जाती है। केतली में तीन प्याली पानी

डालकर स्टोव पर चढ़ा देती है। वह देखती है, शक्कर का वही पुराना टीन। चाय का वही डब्बा। सिर्फ दोनों के रंग उड़ गए हैं। वस्तु में स्थिरता है, उसके आवरण में नहीं।

चाय बनाकर पूजा-घर में जाती है। मां पेट के बल लेटी हैं।

उठाती है। उनकी आंखें पाखी पर स्थिर हो जाती हैं, फिर पानी की तरह बहुत कुछ हिलने लगता है। वे फर्श पर सिर टिका देती हैं। पाखी कहती है—मां, चलो चाय पी लो।

अस्वीकृति में मां का सिर हिलता है।

पाखी वहां से हिलती नहीं।

थोड़ी देर बाद मां पूछती—अभी रहेगी न ?

—हूं। पाखी धीरे से कहती है। उसे फिर भय लगता है, मां कोई और प्रश्न न करें। बाहर आ जाती है। बाथरूम अब भी बन्द है।

वह दस्तक देती है।

कोई उत्तर नहीं मिलता। उसे लगता है, जैसे धीरा भीतर सिसक रही है।

वह चुपचाप खाट पर बैठ जाती है। फिर उठकर तीनों प्यालियों पर तश्तरियां रख देती है।

धीरा आती है। मां की खाट पर बैठ जाती है। कुछ कहती नहीं। पाखी एक प्याली उठाकर ठण्डी चाय सिप करती है। धीरा भी वही करती है। पाखी की प्याली खाली होने पर, उठकर दोनों प्यालियां किचिन में ले जाकर धोती है।

पाखी को लगता है, यह घर एकदम स्थिर हो गया है। इसकी सारी गति को जैसे कोई ग्रस गया है।

धीरा आकर मां की खाट पर पसर जाती है।

पाखी कुछ कहती नहीं। आंखें बन्द किए अनुभव करती है। फिर उठती है—मैं बाहर जा रही हूं।

धीरा सिर भी नहीं उठाती। वैसे ही कहती है—अच्छा।

पाखी घर का पिछला दरवाजा खोलकर गार्डन की तरफ निकल जाती है। छोटी-सी सड़क। उस पार गार्डन। पहले इसी सड़क को पार

करते समय, वह मुड़कर देखती थी कि कोई देख तो नहीं रहा। और जब वह पार कर जाती थी, तो एक विचित्र सुरसुरी-सी लगती है। वह सड़क पर आ जाती है। मुड़कर नहीं देखती, कोई देख भी रहा है या नहीं। धीरे-धीरे गार्डन में जैसे डूब जाती है। अंधेरा घिर आया है और वह एक अंधेरी सुरंग में घुस जाती है। यह सुरंग, कहीं बहुत दूर गंगा से होकर कहीं और निकल गई है। घुप्प अंधेरा।

पाखी वहीं बैठ जाती है। स्थिर पाखी के भीतर-बाहर फिर जैसे बहुत कुछ हिलने लगता है। वह घुटने में मुंह डालकर सिसकने लगती है·· वह पूरे तीन वर्ष बाद इस सुरंग में आई है। अकेली। इसके पहले भी तीन बार आई थी। रमेश के साथ। तब वह पढ़ती थी। वह अंधेरे में छटपटाती है। उसका जी होता है, वह अंधी सुरंग में चल पड़े·· तब तक चलती रहे, जब तक यह अंधेरा उसे ग्रस न ले।

फिर धीरे-धीरे वह अपने को समेटकर स्थिर कर लेती है। बहुत देर से मन रोने को छटपटा रहा था। इस सुरंग में वह खुलकर रोई थी। कुछ स्थिर होकर उठी।

घर का पिछला दरवाजा, जो वह खुला छोड़कर आई थी, अब भी खुला था। उसने सोचा, किसी को भी कोई चिन्ता नहीं। न मां को, न धीरा को। हर कोई अपने दुख में जी रहा है। उसने स्विच ऑन किया।

करवट बदलकर धीरा ने कहा—बुझा दो दीदी, आंख पर लगती है।

—पढ़ोगी नहीं?

—ना, जी अच्छा नहीं है।—धीरा ने चादर खींच ली।

पाखी बुत की तरह स्थिर।

फिर एक चादर लेकर पूजा-घर में जाती है। मां पर डालकर, खुद खाट पर आ पड़ती है।

सुबह वह उठती है।

चाय-रोटी बनाकर मां को बुलाने जाती है।

मां आ जाती है। मगर धीरा बाथरूम उसी तरह बन्द किए है। वह नहीं आती। पाखी जानती है, धीरा जान-बूझकर अपने को अलग काटे हुए है।

आई भी है या नहीं। कोई मतलब नहीं।

पाखी चिन्तित हो उठती है। धीरा को अब से बहुत पहले आ जाना चाहिए था। वह खाट पर बैठ जाती है। दरवाजे से बाहर देखती है। फिर धीरे-धीरे उठकर अपनी आलमारी के पास आती है। खोलती है। सारी चीजें रखी हैं। वह कुछ कपड़ों को उलटती है। तभी पारदर्शी कागज में लगी पीली गोलियां आ जाती हैं। उसके सारे शरीर में कंप-कपी पैदा हो जाती है। यही गोलियां···

तभी धीरा मेज पर किताबें फेंककर बाथरूम की तरफ जाने लगती है। पाखी अनुभव करती है, वह भीतर से बॉल्ट कर अभी घण्टों रोएगी, कल की तरह। टोकती है—धीरा, इधर सुन।

धीरा उसके पास आती है।

—इस घर को क्या हो गया है ?

—कुछ नहीं दीदी—वह धीरे से कहती है।

—कुछ कैसे नहीं ! न मां को तेरी चिंता है, न तुझे मां की।

धीरा कुछ नहीं कहती।

—मैं देख रही हूं तूने खाया, न खाया। आई, न आई। इसकी भी मां को फिक्र नहीं। माना, उन्हें पिताजी का दुख है···पर तुझे क्या हुआ ? —पाखी धीरे से उसके सिर पर हाथ रख देती है।

धीरा एकदम अस्थिर हो जाती है।

पाखी की छाती में मुंह छिपाकर बुरी तरह सुबकने लगती है—दीदी मुझे कुछ दे दो··· मैं मां को मुंह नहीं दिखा सकती। तुम्हें भी नहीं। किसी को भी नहीं। मुझे कुछ दे दो। मैं मां···

पाखी एकदम से जैसे हिल जाती है···खुली आलमारी। आलमारी में रखी पीली गोलियां—स्काटपिल्स। शादी से पहले, यही गोलियां रमेश उसे तीन बार खिला चुका है। तीन बार वह मां बनते-बनते बच गई। बहुत खुश हुई थी। मगर शादी के बाद, वह लाख चाहकर भी जब मां नहीं बन पाई, तो रमेश ने उसे बांझ करार कर तलाक दे दिया और वह चुप-

चाप घर लौट आई। हर किसी के प्रश्नों से डरती रही। भागती रही।

धीरा अब भी सिसक रही है।

पाखी, कभी धीरा को, कभी गोलियों को, कभी खुद को देखती है। वह एकदम अस्थिर हो गई है। उसका मन करता है, वह चिल्लाए, रोए, सिर पीटे या फिर मां की तरह अपने को भी किसी कमरे में बन्द कर भूल जाए कि यह कोई घर है, यहां लोग रहते हैं।

रेगिस्तान की मछली

…नियम था, सप्ताह में एक बार मछली अवश्य। और जब रविवार आता, पिताजी कहते—"शिशि, मछली तू ला। तुझे खूब परख है। कौन रोहू, कौन पवई, कौन सिंघी, कौन कतला…।" शिशि मछुआ टोली जाती। लौटती, तो दूर से ही शोर करती हुई—पिताजी, आज हिलसा लाई हूं। हमेशा धार के विरुद्ध जाने वाली माछ। आज सेंकची, पुराना से पुराना दर्द भी चला जाए। आज टेंगड़ा। आज मोआरी। आज बचका। आज चिंगड़ी। आज…" और धीरे-धीरे शिशि आज में लौट आती है। आज, जब कि पिताजी शेष नहीं…आज, जब कि राजेन्द्रनगर का पानी पूरी तरह से निकल पाया है। जब तक पानी कदमकुआं से आकर राजेन्द्रनगर को घेरे रहा था, उसे लगा था, उसकी कोई तमन्ना पूरी हुई है। और पुनपुन के बढ़ आने पर तो वह अपने को हमेशा पानी से घिरी हुई एक मछली अनुभव करती हो…

वह भीतर ही भीतर तृप्त होती रही।

बरामदे पर घण्टों खड़ी रहती। पैर दुखने लगते, खिड़की पर बैठ जाती। अब नावें चलने लगी थीं। नेवी की ट्रेनिंग लेने वाले लड़कों की नावें। साफ धुले कपड़े। उजले-उजले हंस जैसे। दूसरी तरफ पेशेवर मल्लाह। वही ठेहुने-भर की धोती। खुला-खुला नंगा शरीर। माथे पर गन्दी-सी पगड़ी अंगोछे को लपेटकर बनाई हुई। और जब नावें गुजरतीं, उसे दुख होता, मल्लाहों के थके-बुझे चेहरों पर विवशता-पूर्वक लादी गई चुप्पी अनुभव कर। उसका जी होता, वह कोई लोक गीत खूब ऊंचे स्वर में गाए…पानी पर रखी हुई यह खामोशी तो उसे एकदम तोड़कर रख देगी।

विशि देखती है, घर छोड़कर जाने वालों के चेहरों पर मौत जैसी उदासी। इन घरों में, सचमुच, ढेर-सारी लाशें हैं··· लाश, यानी फ्रिज। लाश, यानी कार-स्कूटर। लाश, यानी सोफा। लाश, यानी··· कल इन घरों में, फिर इन्हीं चीजों की जरूरत होगी। और ये तमाम चीजें फिर उसी रास्ते से आएंगी, जिस रास्ते आई थीं··· जिसका नाम ऐसे ही लोगों ने महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री या इसी तरह की किसी और बड़ी हस्ती पर रख छोड़ा है। और इस मार्ग से होकर ये चीजें उस जगह आएंगी, जिसका नामकरण भारत के प्रथम राष्ट्रपति के नाम पर हुआ है···राजेन्द्रनगर। वह देखती है, दूर तक अंधकार की तरह लेटी हुई सड़कें···उसके शरीर में कंपकंपी होने लगती है।

विशि देखती है, पानी चला गया है। मगर उसके हाते की जमीन अब भी गीली है। गीली जमीन पर पैरों के निशान साफ-साफ उभरे हुए हैं···। जब पानी था, तो दूर तक कुछ भी नहीं दिखता था, सिर्फ पानी। पानी से घिरा, पूरा राजेन्द्रनगर।

फिर नावों पर दुकानें खुल गईं। विशि बेहद खुश हुई। वह जब-तब आवाज देती···नाव वाले, इधर भी लाना भाई।

नाव उसकी सीढ़ियों से सटकर, एकदम जैसे बरामदे तक आ जाती। कभी माचिस लेती। कभी आटा। कभी तेल। कभी कुछ। अपने हाते में नाव देखकर वह प्रसन्न होती। यदि थोड़ा पानी और आ गया होता तो सम्भव था, वह नाव को अपने कमरे तक ले जाती···उसका जिस सिहरन से भर जाता है।

वह चुपचाप शान्त जल को देखा करती, इसी तरह। न कुछ बोलती न कुछ सुनती। खामोश रहकर भी, ढेर सारा सुख बटोर लेना वि खूब जानती है। धर्मेश किसी घास से उसे धीरे-धीरे सहला रहा श्र

हाउ स्टिल,
हाउ स्ट्रेंजली स्टिल
द वॉटर इज़ टु डे।
इट इज़ नॉट गुड

फॉर वॉटर

टु बी सो स्टिल दैट वे…

और लगातार सहलाए जाने से वह एकदम सिहर जाती……"धर्मेश, तुम जानते हो, मुझे पानी प्रिय है। मैं तो भगवान से यही प्रार्थना करती हूं, हे ईश्वर। अपनी विशि को उस क्षण मृत्यु देना, जब वह जल के समीप हो…"

—"तुम्हें अशुभ बोलना प्रिय है?"—धर्मेश ने पूछा था।

वह शान्त भाव से स्थिर जल को देखती रही। फिर बोली—"ना, मुझे सिर्फ जल प्रिय है। मैं तो मात्र इतना चाहती हूं कि तुम मेरी मांग भर दो, और मुझे उसी जगह रखो जहां पानी अवश्य हो।"

धर्मेश चुप था।

उसने ही स्पर्श कर कहा था—"तुम्हें ऐसा नहीं लगता धर्मेश, कि जल के समीप आकर हम एक विशेष तरह की तृप्ति भोगते हैं…"

—"तुम्हें औरत नहीं, मछली होना था।"

वह बहुत ही आहिस्ता मुसकराई। इतना आहिस्ता, कि शायद धर्मेश ने देखा भी नहीं……"गहराई से देखो, तो मैं औरत कहां। मात्र एक मछली हूं। औरत की एक साध होती है, कि कोई एक पुरुष उसकी मांग भर दे। इस साध के लिए उसके पास एक अधिकार भी होना है। परन्तु मैं तो वर्षों से तुम्हारे साथ यह जीवन जी रही हूं, चाह रही हूं कि तुम मेरी मांग भर दो…मगर अन्त में, केवल मछली-भर रह जाती हूं, जिसे तुम्हारी इच्छा के अनुरूप बह जाना पड़ता है।"

—"विशि, क्या तुम्हें लगता नहीं कि तुम मेरी पत्नी हो?"—धर्मेश ने उसके कन्धे पर हाथ रखा था।

—"लगना, और होना…क्या ये दो विपरीत स्थितियां नहीं हैं?"—इतना कहकर फिर जल की तरह स्थिर हो गई थी।

धर्मेश कुछ नहीं बोला। विशि चुपचाप उसके शब्दों की प्रतीक्षा करती रही, वैसी ही। मन से विवश होकर किसी को समर्पित रहना… पत्नी होकर भी पत्नी न होना, और मात्र एक चुटकी सिन्दूर को तरसना… विशि ने इन दो वर्षों में खूब सीखा है।

धर्मेश ने सदा की तरह कहा—"अब उठो। इट इज नॉट गुड फार द वॉटर, टु बी सो स्टिल डैड वे···एण्ड फार वुमेन टू···"

साड़ी को समेटती हुई विशि उठी थी—"धर्मेश, मैं अब भी उस कम-जोरी को सोच नहीं पाई हूं, जिसने तुम्हारे समक्ष मुझे इतना विवश कर दिया है।"

—"विशि, वर्ल्ड इतना एडवान्स्ड हो गया है, और तुम अब भी मरी हुई भावुकता से लिपटकर रो रही हो···इज इट गुड ?"

विशि ने उसे रुककर देखा···"रोने का क्या ! सती की लाश को अपने कंधों पर लादे-लादे भगवान तक रोते फिरे थे।"

—"आज का युग भगवान का नहीं, इंसान का है···वी आर लिविंग इन डेज़ आफ मैन, इन डेज़ ऑफ फैक्ट्स। बिलीव मी, एक दिन यही आदमी, तुम्हारे भगवान के काल्पनिक चेहरे को नोंचकर फेंक देगा··· और तब, तुम्हारा यह गॉड एकदम नंगा हो जाएगा···न्यूड।"

विशि ने कोई उत्तर नहीं दिया था। बस, धीरे-धीरे चलती रही···

धर्मेश ने ही कहा था···तुम्हारी इसी भावुकता के कारण, मुझे रोज राजेन्द्रनगर से महेन्द्रूघाट आना पड़ा है। घण्टो बेमतलब, बेवजह पानी को महसूस करते हुए, खुद को, तुम को वेस्ट करना पड़ा है। यदि सम्भव होता, तो इस पानी को उठाकर तुम्हारे घर के हाते में भर देता···

विशि देखती है, पानी एकदम सूख गया है। एक नाव सड़क पर यूं ही बेकार पड़ी है याने वेस्ट हो रही है। न चाह कर भी वेस्ट होना कितनी बड़ी विवशता है।

वह देखती है, धर्मेश आ रहा है। इसलिए, वह बरामदे पर घंटों से खड़ी है।

वह एकदम निकट आ जाता है—तुम सचमुच लकी हो विशि, तुम्हारे दरवाजे तक पानी खुद आया···तुमने तो इस जल के समीप अपने को बहुत तृप्त पाया होगा ?"

वह केवल मुसकराई।

धर्मेश पानी निकल जाने के बाद पड़ी दरारों को देख रहा था। विशि ने ही पूछा—"तुम जो गए, तो फिर आए नहीं। यह भी नहीं जानना

चाहा, कि विशि बची या···"

—"तुम्हें अशुभ बोलना प्रिय है···लेकिन मैं जानता था, विशि तो मछली है, जल के कारण उसकी आयु और बढ़ जाएगी।"—और वह जोर से हंसा। हंसते-हंसते यकायक गम्भीर हो गया—"तुमने शादी कर ली?"

—"ना।"

—"फिर ये सिन्दूर?"

—"मात्र विवशता। धर्मेश, सब लोग राजेन्द्रनगर छोड़कर जा रहे थे। मैं भी रांची जाने के लिए यार्ड में पड़े एक खाली कम्पार्टमेंट में थी। अकेली। अंधकार। तभी किसी ने मुझे विवश कर, पुनर्समर्पिता बना दिया ···मैं चीख भी नहीं सकी थी। और जब वह जाने को हुआ, मैंने उससे रुकने को कहा। सूटकेस से टटोल कर, सिन्दूर की वही डिबिया निकाली, जो इन दो वर्षों में बार-बार तुम्हारे सामने रख चुकी हूं। मैंने कहा—तुम कौन हो, कैसे हो, मैंने तुम्हें देखा तक नहीं···जाना तक नहीं। फिर भी तुमने वह सब कुछ पा लिया, जो तुम्हें नहीं पाना था···क्या एक दया नहीं कर सकते, कि इस डिबिया से चुटकी-भर सिंदूर मेरी मांग में भर दो? और धर्मेश, उसने सचमुच मेरी मांग भर दी। फिर मैं जा नहीं सकी। लौट आयी।"

धर्मेश उसे देखता रहा। फिर धीरे-धीरे उसके चेहरे पर घृणा उभर आई—"इसका अर्थ हुआ, तुमने एक गुण्डे को शरीर दान किया है···"

"मैंने पहले ही कह दिया, वह मात्र विवशता थी।"

—"नहीं, तुम्हारी अपनी इच्छा थी। मैंने शुरू से अनुभव किया ? तुम सिन्दूर के लिए परेशान थी···इसी लालच में तुमने अपने को ? [illegible] बनाया है।"—धर्मेश चीखा था।

विशि ने कांपते स्वर में कहा—"तुम ठीक ही कहते हो [illegible] गलत थी। मैं अपनी इच्छा से हार कर जूठन बनी हूं

धर्मेश ने, शायद फिर कुछ नहीं सुनना चाहा था [illegible]
सीढ़ियां उतर गया।

विशि शान्त खड़ी रही, स्थिर जल की तरह।

हाते की कच्ची जमीन पर, धर्मेश के जूतों के ढेर सारे निशान उगे थे। उन्हीं की वगल में नन्हें-नन्हें पैरों के छोटे-छोटे चिह्न···उसने कहा था —"ये चिट्ठी ?···जरा सुनो तो वेवी···"

—"हम आपसे वात नहीं करेंगे। ममी वाहर सड़क पर खड़ी हैं।"

—"वात नहीं करोगी, क्यों ?"

—"ममी ने मना किया है। आप वुरी औरत हैं न, इसीलिए। आप हमारे डैडी को घर नहीं आने देतीं···" और ढेर-सारे नन्हें-नन्हें निशान उगते चले गए। विशि को लगा, वह स्वयं हाते की कच्ची जमीन है और उसके जिस्म पर ये चिह्न इस तरह उभर आए हैं, जैसे वह इन पैरों से बुरी तरह रौंदी-कुचली गई है···और उसने माथे के सिन्दूर को अपने उसी कांपते हाथ से मिटा दिया, जिससे उसने स्वयं लगाया था···कि एक पल को वह धर्मेश के सामने सिन्दूर भरी औरत वन सके, परन्तु इस क्षण उसे लग रहा था अब न वह एक औ[illegible] रही है, न एक लड़की, मात्र मछली [illegible] हुआ है, सि
राजेन्द्रनगर का पानी सूख गय
रेगिस्तान···

अंधे आकाश का सूरज

आज उसने फिर एक कांट्रैक्ट पर साइन किए।

प्रोड्यूसर कई चक्कर लगा चुका था। साथ में स्क्रिप्ट भी थी। उसने नियम-सा बना लिया है, पहले वह कहानी सुनती है, जंच जाने पर कई सुझाव देती है, जैसे संगीत निर्देशक कौन होगा, गीत कौन लिखेगा? निर्देशक का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता, क्योंकि वह वही फिल्म करती है जिसे डायरेक्टर मिस्टर बतरा करते हैं यानी उसके पति।

कांट्रैक्ट सामने रखकर वह कुछ सोचने लगी थी…बस यूं ही और निर्माता बार-बार नोटों की एक गड्डी उसके सामने रखता जाता था। उसका चेहरा देखता था, फिर थैली में हाथ डाल देता था। उसे प्रोड्यूसर पर दया भी आयी और क्रोध भी…अब उसमें क्या अंतर आ गया है • ? पहले भी तो वह वही थी, वही बिन्नी…लेकिन आज उसकी एक साथ कई फिल्में रिलीज हुईं और सबकी सब हिट। सब में वह मां बनी है। और, अब ऐसी फिल्मों की बाढ़ आ गयी है। बड़े से बड़ा निर्माता भी उसे लेकर एक आदर्श मां पर फिल्म बना रहा है। अभी कल ही, एक फिल्म की शूटिंग हो रही थी, 'बंबई और बच्चा'। ट्रैफिक का एक बड़ा सेट बनाया गया था। लाग शाट में एक छोटा-सा बच्चा रोता हुआ जा रहा है। बंबई की भीड़, तेजी से आती हुई कारें• और तभी क्लोजअप में उसका चेहरा उभरता है। वह भय से चीखती है, नहीं…नहीं • नहीं …और, धीरे-धीरे गिरकर बेहोश हो जाती है। उसके गिरते ही बतरा चीखता है, "कट"। बतरा उसके पास आता है, "तुमने तो कमाल ही कर दिया डार्लिंग !…आओ चलें।"

दोनों दूसरे कमरे में आ जाते हैं। बतरा अपने हाथों से शराब उड़े

ता है, "कम आन वेवी।"

वतरा के वेवी कहने पर वह मुसकराने लगती है।

सेट का शोर उभरता रहता है। लाइट नंवर वन थोड़ा नीचे करो। थ्री को उस साइड। कंटिन्युटी के कपड़े निकालो। सीन फोर शूट किया जाएगा। मस्ट हेस्ट। एसिस्टेंट डायरेक्टर इधर से उधर दौड़ रहा है।

वे लोग जव दुवारा सेट पर आये तो कुछ एक्स्ट्रा किसी वात पर हंस रहे थे। दोनों को देखते ही चुप हो गए।

वतरा ने एक वार सबको घूरा, फिर असिस्टेंट को वुला कर बोला, "तुम अच्छी तरह जानते हो, मैं सेट पर डिसिप्लिन पसंद करता हूं..."

"सर, वात ये है कि..."

"क्या वात है?" वतरा की आवाज कड़ी थी।

"वात कुछ भी नहीं सर...वस, वात ये है सर कि एक एक्स्ट्रा कह रहा था कि एक वार एक हीरोइन सेट पर वेहोश हो गई थीं। उनका वेहोश होना था कि सारी की सारी यूनिट घवरा गयी। शूटिंग तक कैंसिल कर दी गयी। तीन-चार दिनों वाद एक हास्य अभिनेता सेट पर वेहोश हो गया। डायरेक्टर ने कहा, इसे उठाकर पेड़ के नीचे रख दो। ठंडी-ठंडी हवा खाकर होश में आ जाएगा। सेट खाली करो और शूटिंग चालू। चार जूनियरों ने उन्हें उठाकर पेड़ के नीचे रखा ही था कि वह उठ बै "भाइयो, मैं वेहोश ही कहां हुआ था? अजीव किस्मत है, हीरोइन वेह हों तो कोका-कोला और मैं...तो पेड़ की छाया..."

एसिस्टेंट की वात खत्म होते ही एक्स्ट्रा फिर हंसने लगे।

वतरा ने चिल्लाकर कहा, "शट्अप। इन लोगों को भगा दो सिलाई वाला एक्स्ट्रा सप्लायर को फोन कर दो कि वह कल नये भेज दे। आज की शूटिंग कैंसिल..."

सारे वातावरण को सांप सूंघ गया। किसी प्रकार ड एसिस्टेंट ने कहा, "सर, ये वहुत गरीव लोग हैं। विचारे कभी हंस लेते हैं। आज का दिन मारा जाएगा तो ..."

वतरा ने मुसकराकर कहा, "ओ, आई सी, तो तुमने को यूनियन वनाई है?"

"नहीं सर, नहीं। मैं अभी पैक अप करता हूं..."

और, बतरा के कार मे बैठते ही वह भी बैठ गई थी। वह बतरा के क्रोध को जानती थी। उसमे टोकने का साहस नही हुआ। दोनों रास्ते-भर चुप रहे। बतरा चुपचाप सिगार पीता रहा। वह कार के बाहर देखती रही।

पोर्टिको मे कार रुकते ही उसने सोचा, आज वह खूब आराम करेगी। सिर्फ आराम।

लेकिन भीतर घुसते ही प्रोड्यूसर।

उसने सोचा, चलो अच्छा ही हुआ, जब तक वह कहानी सुनेगी, बतरा अपने आप शांत हो जाएगा।

"विन्नीजी, अब तो साइन कर दीजिए।"

वह चौंक गई। सामने नोटों की कई गड्डियां थी।

"तुमने अब तक साइन नही किया डार्लिंग ?" बतरा ने भीतर से आते हुए पूछा। बतरा की आदत है, जब भी कोई निर्माता आता है, वह या तो भीतर चला जाता है या कार लेकर बाहर। बतरा की इस गैरहाजिरी का अर्थ वह खूब जानती है। लेकिन कुछ कहती नही।

साइन करते-करते उसने धीरे से कहा, "इसमे बच्चे का जो कैरेक्टर है उसका नाम बदल दीजिए।"

"क्या नाम है ?" बतरा ने पूछा।

"अमित" प्रोड्यूसर बोला।

"नाम तो अच्छा-खासा है। तुम्हे ऐतराज है डार्लिंग...?"

"छोड़िए भी डायरेक्टर साहब, नाम मे क्या रखा है ? कुछ भी हो। हमें तो बैनर पर विन्नीजी का नाम चाहिए...हे-हे..." और वह उठ गया।

प्रोड्यूसर चला गया तो बतरा एकदम नाराज हो गया, "तुम भी अजीब बातों पर ऐतराज करती हो...ऐतराज ही करना था तो इन गड्डियों पर करती, कुछ दे भी जाता।" और, रुपये उठाकर बतरा भीतर कमरे मे चला गया।

वह जाने को उठी तो सेक्रेटरी आ गया, "मैडम, फैंस के खत हमेशा

रह पोस्ट कर दिए गए हैं और आपके फोटोग्राफ्स भी…"

"तो इसमें मैडम से पूछने की क्या वात है?" वतरा ने आते हुए कहा, खिर तुम्हें किसलिए रखा है…इसलिए कि लोगों के पत्र आएं और हमें खवर दो। ये तुम्हारा काम है कि पत्रों को पढ़ो और मैडम का इप्ड खत उन्हें भेज दो। दैट्स आल। नाऊ यू कैन गो।"

"लेकिन सर, एक मैगजीन से फोटोग्राफर आया है। वह मैडम का एक चित्र उतारना चाहता है, प्रशंसकों के पत्रों का उत्तर देते हुए…"

"ओ आई सी। तुमने चाय-नाश्ते को पूछा?"

"यस सर।"

वतरा ने कहा, "आओ डार्लिंग।"

दोनों कमरे में आ गए। फोटोग्राफर ने कैमरा ठीक किया। सेक्रेटरी ने रद्दी की टोकरी लाकर पलंग पर उलट दी।

वह धीरे-धीरे पलंग तक गई। फिर एक पत्र खोलकर मुसकराती हुई लेट गई।

"रेडी…वन…टू…स्माइल…थैंक्स!"

फोटोग्राफर चला गया।

सेक्रेटरी ने पत्रों को पुनः रद्दी की टोकरी में डाल दिया।

वतरा ने पूछा, "आज तुमने कोई चेक भेजा?"

"नहीं सर।"

"अजीव आदमी हो, कितनी वार कहा कि रोज एक-दो चेक उ फैंस के नाम भेज दिया करो जो पैसों की मांग करते हैं। मैं जानता इनमें से वहुत सारे वोगस लोग होते हैं। लेकिन कितना लाभ है, एक चेक मिलता है तो वह पचास को दिखलाता है। इससे वढ़कर पब्लि और क्या होगी…? विन्नी का कितनी दूर तक नाम फैल गया है कि दयालु और रहमदिल औरत है। तुम सव चौपट कर दोगे और टैक्स भी…जाओ, जाकर भेजो।"

वतरा अपने कमरे में चला गया।

वह चुपचाप अपने कमरे में आ गई। एयरकंडीशनर खो गई। आंखें वंद करते ही उसे लगा दूर…वहुत दूर तक एक अ

गई । डायरेक्टर साहव ने कहानी थोड़ी वदल दी । अव कहानी में -अभिनेत्री का रोल वढ़ा दिया गया था । फिल्म शूट होती रही और चानक उसे एक दिन खवर मिली कि डायरेक्टर साहव का हार्ट फेल हो या । उसकी पहली ही फिल्म डव्वे में चली गयी । उसके पैरों तले की जमीन निकल गई । प्रोड्यूसर ने फाइनेंसर को लाख पटाया, लेकिन वह नहीं माना । और वह हीरोइन से फिर एक मामूली विन्नी वन गई ।

अव वह कहीं भी जाती तो एक ही जवाव मिलता, "हमें ऐसी अनलकी स्टार लेकर फिल्म को डव्वे में नहीं भरना है ।"

एक शाम, वह थकी-हारी किसी स्टूडियो का चक्कर लगाकर लौट रही थी और सोच ही रही थी कि अचानक वतरा मिल गया । उसे एक होटल में ले गया । चाय पिलायी और वोला, "तुम्हें हीरोइन वनना है ? मैं वना दूंगा ।"

इम एक वाक्य से उसकी आंखों में आंसू आ गए । उसके पास अव केवल एक ही सपना वच रहा था और जव वतरा ने सपना सच करने की वात कही तो वह अपने को रोक नहीं सकी ।

वतरा ने कहा, "देखो विन्नी, तुम्हें हीरोइन वनना है और मुझे डाय-रेक्टर । तुम मेरा माथ दो और मैं तुम्हारा · वाइ द वे तुम कुंवारी हो न ?···क्योंकि यहां के लोगों की टेस्ट कुछ इसी तरह की है ।"

उमने किसी तरह सिर हिला दिया ।

"अव देखना विन्नी, जो मेरा वाप नहीं कर सका, वह मैं कर दि लाऊंगा ।" और वतरा हंसने लगा ।

फिर उमे रोज नये-नये प्रोड्यूसरों के पास ले जाता । घंटों कमरे में छोड़कर खुद अकेला फुटपाथ पर टहलता रहता या किसी मा सी दुकान में चाय सिप करता रहता ।

जव वह कमरे मे वाहर निकलती, दौड़ा हुआ आता, "म सेठ ?"

उसके इनकार में सिर हिलाते ही वह चुपचाप उसके साथ चलने लगता । फिर लोकल ट्रेन में सवार होकर दो तरफ निक

वह अपनी जिंदगी से करीव-करीव ऊव चुकी थी

एक दिन प्रस्ताव रखा, "ये रोज-रोज का लफड़ा ठीक नहीं, तुम मेरे कमरे में आ जाओ। ऐसे समय बहुत नष्ट होता है।"

"तुम्हारे कमरे में?" वह चौंक गई थी।

"तुम्हारे लिए कोई नयी बात नहीं होगी, वैसे भी तुम मेरे बाप के कमरे में जा चुकी हो। अगर हीरोइन बनना है तो···" बतरा ने कहा।

उसके आगे कोई रास्ता नहीं था। उसका आसमान बेहद छोटा हो गया था। और ये डर भी था कि कब टूटकर उसके ऊपर गिर जाये··· वह बतरा की बात मान गई।

अब रात में भी बतरा किसी-किसी के पास छोड़ देता। आखिर एक प्रोड्यूसर मान गया। उसने छोटी पूंजी की फिल्म में बतरा को निर्देशक और उसे हीरोइन बना दिया। फिल्म रिलीज होते ही तहलका मच गया। एकदम हिट फिल्म निकली। और, रातों-रात बतरा महान् निर्देशक और वह जुबली स्टार बन गयी। फिर तो फिल्मों पर फिल्म मिलने लगी।

"मैडम, कोई खाली तारीख देकर डेट दे दूं?"

वह चौंक गई। सामने सेक्रेटरी खड़ा था। तभी बतरा आ गया। वह निर्माता से बातें करने लगा। वह चुपचाप सुनती रही।

फोन की घंटी बजने लगी। सेक्रेटरी ने रिसीवर उठाया, "जी हां, हां···हैं ··अच्छा, जरा रुकिए ··"

"क्या बात है?" बतरा ने पूछा।

"सर, किसी समिति वाले का फोन आया है कि एक गरीब आदमी मर गया है। मरने के बाद बिन्नीजी का फोन नम्बर उसकी जेब से निकला। वह शायद कुछ सहायता चाहता हो। लेकिन अभी तो वे लोग इस उम्मीद में हैं कि मैडम कुछ मदद कर दें तो लाश उठे ··"

"ग्रैंड आइडिया।" बतरा ने हंसते हुए कहा, "बिन्नी, इट्स ए गुड चांस। यू विल गेट नाइस पब्लिसिटी। जाओ, कुछ रुपये दे आओ।"

"तुम नहीं चलोगे?" उसने धीरे से पूछा।

"चलो चलते हैं।" और बतरा उठ खड़ा हुआ। वह मेकअप ठीक करने भीतर चली गई। सेक्रेटरी ने फोन पर पता पूछा। फिर कुछ पत्रकारों को सूचना दी। पुलिसवालों को फोन किया।

जब वे लोग पहुंचे, खोली के पास खासी भीड़ जमा थी। बतरा और

ह भीतर दाखिल हो गये। लाश यू... कर बांध... शरीर अकड़
र कुछ टेढ़ा हो गया था। किसी ने सीधा कर बांध... हीं था। आंखें
दोनों फटी-फटी खुली थीं। उससे लाश देखी नहीं गई। तभी एक औरत
ने कहा, "वह सामने है, उसका वच्चा..."

उसने देखा, चेचक के दागों से गिजगिज भरा, दीवार टटोलकर आता हुआ चार-एक साल का अंधा वच्चा...

"अभी पिछले ही साल इसका वाप इस खोली में आया था। पिछले ही वर्ष इस वच्चे को चेचक हुआ, चेहरा और आंखें एक साथ...वाप था तो कमाता था, अव भगवान ही जाने इस अंधे का क्या होगा..." तभी वच्चा ठोकर खाकर गिर गया। विन्नी आगे कुछ भी नहीं सुन सकी। वह दौड़कर वच्चे से लिपटकर रोने लगी · और जव क्लिक्-क्लिक् कर फ्लैश वल्व जलने लगे, तो उसने देखा, वतरा के हाथों में नोट थे और वह कह रहा था...."विन्नी केवल पर्दे पर ही मां नहीं वनती...उसके पास सचमुच एक प्यार-भरा दिल है...लाश का अंतिम संस्कार कर, वच्चे को किसी अनाथालय में दे दीजिएगा...आप लोगों की वड़ी कृपा होगी।" फिर उसका हाथ पकड़कर उसे वाहर ले जाने लगा। विन्नी ने पलट कर देखा, लाश कपड़े से ढंक दी गयी थी और वच्चा रो रहा था।

कार स्टार्ट होते ही वतरा ने कहा, "कल देखना पेपर, क्या सुर्खियां ... कर न्यूज आएंगी। तुमने तो कमाल कर दिया करुणा की देवी !" और वह हंसने लगा। मगर विन्नी कुछ भी नहीं सुन रही थी, कुछ नहीं...अपने भीतर केवल इतना साहस जुटा रही थी कि वतरा से साफ कह सके, कि दूर तक फैले इस अंधे आकाश के लोभ में ही ... और वच्चे को छोड़कर भाग आई थी...मगर यहां, वह जव भी अ... तो हमेशा अपने अंधे वेटे अमित की तरह ही गिरकर·· उसका ... वह वतरा के कंधे पर सिर पीट-पीटकर रोये और कहे कि तु... वना दिया वतरा...? ये क्या वना दिया मुझे...? लेकिन दूस... उसके सामने आ गये कांट्रेक्ट्स...प्लॉयमाऊथ·· फ्लैट...विय... ऑन ··फैन ऑफ...स्टार्ट कट...ओ० के० प्रीमियर...जु... ...और, उसने वतरा के कंधे पर आहिस्ता से सर रखकर ... लीं।